भूमिका

छन्द रचे भूधर कवि, शहर आगरे थान।
अर्थ ज्ञानचन्द ने लिखो, लहुर नगरमें जान ॥१॥
शतक नाम सौ को कहैं, तातें शतक कहात।
मूल छन्द सौ थे रचे, भिन्न सात कविजात ॥२॥
हक रक्खा स्वाधीन है, छाप सके नहीं कोय।
पढ़ें अर्थ जो भव्य जन, मतलब समझें सोय ॥३॥
जैन धर्म का सार यह, भूधर भरो इस माय।
नहीं पढ़ा यह ग्रन्थ जिन, जैनी यूंही कहाय ॥४॥
नर भौ पाना कठिन है, धर्म लाभ दुशवार।
ग्रन्थ छपे शुध नहीं पढ़े, ते नर मूढ़ गंवार ॥५॥

भूधर जैनशतक।

श्री आदिनाथ स्तुति

(पोमावती छन्द)

ज्ञानजिहाज बैठ गणधरसे, गुणपयोधि जिस नाहिं तरे हैं।
अमरसमूह आन अवनी सों, घसि घसि शीस प्रणाम करे हैं॥
किधौं भाल कुकरम को रेखा, दूर करन की बुद्धि धरे हैं।
ऐसे आदिनाथ के अहनिशि, हाथ जोर हम पाय परे हैं॥१॥

पयोधि = समुद्र। अमर = देवता। अवनी = भूमी। भाल = माथा। अह = दिन। निशि = रात॥

१—चार ज्ञान कहिये मति श्रुति अवधि, मन पर्यय इन चार ज्ञान रूपी जहाज में बैठ कर श्री गणधर देव भी जिस प्रभु के गुण रूपी समुद्र को नहीं तिर सके अर्थात् पार न पा सके और देवताओं के जो कहीं खोटे कर्म की लकीर बाकी थी उस के दूर करने के वास्ते जिस प्रभु को देवताओं के समूह ने जमीन पर सिर घस २ कर प्रणाम करी है ऐसे कौन श्री ऋषभ देव स्वामी उन के आगे हम हाथ जोड़ कर उन के चरणों में पड़ते हैं॥ १॥

काउत्सर्गमुद्रा धर बन में, ठाड़े रिषभ रिद्धि तज दीनी।
निहचल अंग मेरु है मानों, दोहु भुजा छोर जिन लीनी॥
फंसे अनंत जंतु जग चहला, दुखी देख करुणा चित भीनी।
काढ़न काज तिन्हें समरथ प्रभु, किधौं बांह ये दीरघ कीनी॥२॥

जन्तु = जीव। चहला = कीचड़। भीनी = भीगा। दीरघ = लम्बी॥

२—श्री ऋषभदेव स्वामी अपनी राज सम्पदाको तज कर कायोत्सर्ग मुद्रा धार बन में जा खड़े हुये। उस समय भगवान् का अचल शरीर ऐसा भासता भया मानो

दोनों भुजा नीचे लटका हुये पर्वत ही खड़ा है और संसार रूपी कीचड़ में जो अनंत जीव फंसे हुये हैं उनको दुःखी देख दयाकर मानो प्रभु ने समरथ होय उनके निकास ने को बांह लम्बी करी हैं ॥

करनो कछु न करतें कारज, तातें पाणि प्रलम्ब करे हैं।
रह्यो न कछु पायन तें पैबो, ताहीतें पद नाहिं टरे हैं ॥
निरख चुके नैनन सब यातें, नेत्र नासिका अनी धरे हैं।
कहा सुने कानन यों कानन, जोगलीन जिनराज खरे हैं ॥३॥

कर = हाथ। पाणि = हाथ। पैबो = चलना। अनी = नोक। कानन कान = कानन = वन।

३—चूंकि हाथों से कुछ भी कार्य करना बाकी नहीं रहा इसलिये हाथ नीचे को लम्बे करदिये और पैरों से चलना कुछ भी बाकी नहीं रहा इसलिये चरण नहीं हिलते आंखों से सब कुछ देख चुके इसलिये नेत्र नासिका की अणी पर लगा लिये कानों से और क्या सुनें सब सुन चुके इस लिये बन में ध्यान धरे हुये खड़े हैं।

छप्पय छन्द

जयो नाभिभूपालबाल, सुकुमाल सुलक्षण।
जयो स्वर्गपातालपाल, गुनमाल प्रतक्षण ॥
दृग विशाल वर भाल, लाल नख चरण विरज्जहिं।
रूप रसाल मराल चाल, सुन्दर लख लज्जहिं ॥
रिपुजाल काल रिसहेश हम, फंसे जन्म जंबालदह।
यातैं निकाल बेहाल हम, भो दयाल दुख टाल यह ॥

बाल = बालक। पाल = पालनेवाला। दृग = आंख। वर = श्रेष्ठ। भाल = माथा मराल = हंस। रिशहेश = ऋषभदेव। जंबाल = कीचड़।

४—जयवन्त हो श्री नाभिराजाके बालक कैसे हैं वहबालक कोमल और सुन्दर लक्षणों सहित है शरीर जिनका जयवन्त होऊ वह श्रीऋषभदेव प्रत्यक्ष गुणों की माला स्वर्ग से पाताल पर्यन्त सर्व जीवों के पालने वाले कैसे हैं श्री ऋषभदेव विशाल हैं नेत्र जिन के और श्रेष्ट है मस्तक जिन का जिन के चरणों पर लाल नाखून शोभे हैं

और जिन के सुन्दर रूप रस चाल को देख कर हंस भी लज्जित होय हैं हे श्री ऋषभदेव हम अपने कालरूपी वैरीके जाल और जन्मरूपी कीचड़के द्रहमें फसे हैं हम इस दुःख से अति दुःखी हैं हे प्रभु दयाल होकर हमको इस दुःख से निकालो ॥४॥

चन्द्रप्रभस्तुति (पोमावती छन्द)

चितवत बदन अमल चन्द्रोपम, तज चिंता चित होय अकामी।
त्रिभुवनचंद पापतपचंदन, नमत चरण चंद्रादिक नामी॥
तिहुँ जग छई चन्द्रिका कीरति, चिह्नचंद्र चिंतत शिवगामी।
बन्दों चतुर चकोर चन्द्रमा, चंद्रवरण चन्द्राप्रभु स्वामी॥५॥

अमल = उजला। चंद्रोपम = चंद्रमासमान। चिह्न = निशान आकामी = इच्छारहित

५—कैसे हैं चन्द्रा प्रभु स्वामी जिनका चन्द्रमा समान उज्ज्वल मुखका चितवन कर सब चिन्ता तज कर मन इच्छा रहित होय है और कैसे हैं स्वामी तीन लोक के चन्द्रमा हैं पाप रूपी तप्त के दूर करने को चन्दन हैं जिन के चरणों को चन्द्रमा आदि सर्व ग्रह नक्षत्र नमस्कार करे हैं जिन की यश रूपी चांदनी तीन लोक में फैल रही है जिन के चन्द्रमा का चिन्ह है जिस का चितवन मोक्ष गामी पुरुष करे हैं चन्द्रमा तुल्य है वर्ण जिन का जैसे चकोर चन्द्रमा पर मोहित है इसी प्रकार मैं मोहित हुवा चंदा प्रभु स्वामी को नमस्कार करूं हुं॥

शांतिनाथस्तुति। (मतगयंद छन्द)

शांति जिनेश जयो जगतेश, हरै अघताप निशेशकी नाईं।
सेवत पाय सुरासुर आय नमैं सिरनाय महीतलताईं॥
मौलि विषे मणिनील दीपे, प्रभुके चरणो झलकै बहु झांईं।
सूँघन पाँय-सरोज-सुगन्धि, किधौ चलि के अलिपंकति आईं॥६

जगतेश = जगतकामालिक। महीतल = भूमीतांईं। मौली = मुकट। सरोज = कमल अली = भंवरा। पंकती = मंडली। निशेश = चन्द्रमा॥

६—हे जगतके ईश्वर शांतिनाथ भगवान आप जयवन्त होऊ कैसे हो तुम पापरूपी तप्त को चन्द्रमा की नांई दूर करते हो देवता आन कर आप के चरणों की सेवा करते

और पृथ्वी पर सिर नवाय कर आप को नमस्कार करते हैं और देवताओं के मुकटों में जो नील मणी दिपे हैं उनका जो नीला साया प्रभु के चरणों पर पड़े है। सो ऐसा भासे है मानो चरण रूप कमलों की सुगन्धी लेने को भौरों की मंडली आई है।

श्रीनेमिजिन स्तुति (कवित्त)

शोभित प्रियंग अंग देखे दुख होय भंग,
लाजत अनंग जैसे दीप भानुभासते।
बालब्रह्मचारी उग्रसेनकी कुमारी जादों,
नाथ तैं निकारी जन्मकादो दुखरासते॥
भीम भवकानन में आन न सहाय स्वामी,
अहो नेमि नामी तकि आयो तुम तासते।
जैसे कृपाकन्द बनजीवनकी बन्द छोरी,
त्यों ही दासको खलास कीजे भवपासते॥ ७॥

प्रियंग = प्रियंगुमंजरी जैसा। कादो = कीचड़। अनंग = कामदेव। भीम = भयानक भानु = सूर्य्य। कानन = वन। आन = और।

७—हे नेमिनाथस्वामी आपके अंगका प्रियंगु मञ्जरी समान रंग अति सोभे है जिसके देखने से दुःखों का नाश होय है और आपके अंग की शोभाके सामने कामदेव ऐसे लज्जा को प्राप्त होय है जैसे दीपक सूर्य के प्रकाश के सामने हे यादोराय बाल ब्रह्मचारी उग्रसेन की कुमारी कन्या को तुमने दुःखरूपी कीचड़ से निकाली हे नेमि नामी इस भयानक भव वन विषे अन्य किसीको सहायक न पाकर आपकी शरणआया हुं। हे कृपा नाथ जैसे आप ने वनचर जीवों की बंद खलास की त्योंही मुझदास को भव रूपी फांसी से छुड़ाओ॥

श्रीपार्श्वनाथस्तुति। (छप्पय)

जनम-जलधि-जलयान, ज्ञानजन हंस-मानसर।
सरब इन्द्र मिल आन, आन जिस धरहिं शीसपर॥
पर उपकारी बान, बान उत्थप्य कुनयगण।

गणसरोजबन-भान, भान मम मोह-तिमिरघन ॥
घनवरण देह-दुख-दाह-हर, हरषत हेति मयूर-मन ।
मनमथ-मतंग-हरि पासजिन, मत बिसरोंहु छिन जगतजन ।८॥

जलधि = समुद्र । मानसर = मानसरोवर । भान = सूर्य्य । जलयान = जहाज । भान = आकर । भान = तोड़ । ज्ञानजन = ज्ञानवान । आन = हुकम । मनमथ = कामदेव बान = आदत । मतंग = हाथी । बाण = तीर ॥

८—हे भगवान जन्म मरण रूपी समुद्र से पार उतारने को आप जहाज हो और ज्ञानी पुरुष रूप हंसों के लिये आप मान सरोवर हो । हे प्रभु समस्त इन्द्र आन कर आपकी आज्ञा सीस पर धारे हैं आपका भाव परोपकार करनेका है और खोटी नयों के उखाड़ने को आप बाण वत हो । और मुनियों के समूह वही भये कमल उन के प्रफुल्लित करनेको आप सूर्य हो मेरे मोहरूपी अन्धेरे का नाश करो । आपका श्याम वर्ण शरीर रूपी श्याम बादल मेरे मन रूपी मोर को आनन्दित करने का हेतु है कामदेव रूपी हाथी के जीतने को हे श्री पार्श्वनाथ स्वामी आप सिंह के समान हो हे संसारी पुरुषो ऐसे प्रभु को एक छिन भी मत भूलो ॥

श्रीवर्द्धमानजिनस्तुति । (दोहा)

दिढ़ कर्माचल दलनपवि, भवि-सरोज-रविराय ।
कंचनछवि कर जोर कवि, नमत वीर जिन पाय ॥ ९ ॥

दिढ = अचल । दलन = तोड़नेवाला । सरोज = कमल । कर्माचल = कर्मरूपी पहाड़ । पवि - वज्र । रविराय = सूर्य्य । कर = हाथ ॥

९—हे महावीर स्वामी कर्मरूपी पर्वत के चूरण करनेको आप वज्र समान हो और कमल रूपी भव्य जनों के प्रफुल्लित करने को सूर्य हो आप की छविस्वर्ण समान है मे (कवि) दोनों हाथ जोड़ आप के चरणों को नमस्कार करता हुं ।

सवैया (३१ मात्रा,)

रहो दूर अंतरकी महिमा, बाहिज गुणवरणन बल कापै ।
एक हजार आठ लक्षन तन, तेज कोटि रवि किरणन तापै ॥

सुरपति सहस आंखअंजुलिसों, रूपामृत पीवत नहीं धापे।
तुम विन कौण समर्थ वीरजिन, जगसो काढि मोखमें थापे॥१०

कोटि=करोड़। अंजुलो=हाथ। रवि=सूर्य्य। रूपामृत=रूप। रूपीअमृत॥

१०—हे महावीर स्वामी आपके अन्तर की महिमा तो दूरही रही आप के जो प्रत्यक्षगुण हैं उनके वर्णन करनेकी भी किसीमें सामर्थ नहीं है। आपके शरीरपर एक हजारआठ शुभ लक्षण हैं और एक क्रोड सूर्यकी किरणों के तेज सहित है। इन्द्रएक हजार आंख रूपी अंजुली से आप के रूप रूपी अमृत रस को पीवता हुआ नहीं धापे है हेमहावीर स्वामी तुम्हारे विना कोई भी समर्थ नहीं। जो जगत के जीवों को जगत से निकाल कर मोक्ष में स्थापन करे।

श्रीसिद्धस्तुति। (मत्तगयंद छंद)

ध्यान हुताशन में अरि ईंधन, झोंक दियो रिपु रोक निवारी।
शोक हर्यो भविलोकन को वर, केवल भानमयूख उघारी॥
लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्मजरामृतपंक पखारी।
सिद्धन थोक बसे शिवलोक, तिन्हैं पगधोक त्रिकाल हमारी॥११

हुताशन=अग्नी। वर=श्रेष्ठ। पंक=कीचड। अरी=कर्मरूपीवैरी। भान=सूर्य। रिपु=वैरी और मयूख=किरणें॥

११—हे सिद्ध परमेष्ठी आपने ध्यान रूपी अग्नि में कर्म रूपी इंधन झोंक दिया मोक्ष के आगे जो कर्म रूपी दुशमनों की रोक थो सो हटादी। भव्य जीवों का आप-मे शोक दूर किया और श्रेष्ट ज्ञान रूपी सूर्य की किरणें प्रकाशी जिस से भव्य जीव लोक अलोक को देख कर जन्म जरा मृत्यु रूपी कीचड़ को धोय कर मोक्ष गये जे सिद्धों के जो समूह शिव लोक उसमें जावसे। उनको तीनोंकाल हमारा नमस्कार हो।

तीरथनाथ प्रणाम करैं, तिनके गुणवर्णनमें बुधि हारी।
मोम गयो गल मूस मझार रह्यो, तहँ व्योम तदाकृतिधारी।
जन्म गहीरनदीपति नीर, गये तिरतीर भये अविकारी।
सिद्धनथोक बसें शिवलोक, तिन्हें पगधोक त्रिकालहमारी॥१२॥

व्योम = आकाश। नदीपति = समुद्र। अविकारी = विकाररहित। गहिर = गहरा। तीर = किनारा। मूत = सांचा॥

१२—सिद्धपरमेष्ठी तीर्थोंके नाथ को हम प्रणाम करे हैं। जिनके गुणोंको वर्णन करने में हमारी बुद्धि हार गई जिस प्रकार किसी सांचे के अन्दर का मोम गल जावे सिरफ आकाश बाकी रहे ऐसा ही मोक्ष में जिनका स्वरूप है। जन्म मरण रूपी गहरे समुद्र के जल को जो तिर कर पार जा निर्विकार हो गये अर्थात् मोक्ष भये। ऐसा जो सिद्धों का थोक शिव लोक में बसे है उन को त्रिकाल हमारा नमस्कारहो।

साधुस्तुति। (कवित्त)

शीतरितु-जोरें तहां सब ही सकोरें अंग।
तनको न मोरें नदीधोरें धीर जे खरे॥
जेठकी झकोरें जहां अंडा चील छोरें पशु।
पंछी छांह लोरें गिरिकोर तपते धरे॥
घोर घन घोर घटा चहुंओर डोरें।
ज्यों ज्यों चलत हिलोरें त्यों त्यों फोरें बल ये अरे॥
देहनेह तोरें परमारथसों प्रीति जोरें।
ऐसे गुरुओरें हम हाथ अंजुली करे॥ १३॥

धीर = साधु कोरें = चोटी॥

१३—जब बहुत सरदी पड़ती है तो सर्व मनुष्य अपने शरीर को सुकेड़तें हैं। परन्तु साधू ऐसी सरदी में नदीके किनारे ध्यान धरकर खड़े रहते हैं अपने शरीरको ज़रा भी नहीं मोड़ते और जेष्ठ के महीनेमें जब ऐसी सखत लूह चलतीहैं कि चील भी अंडों का सेवन त्याग कर भाग जाती हैं और पशु पक्षी इत्यादि सब जीव छाया की इच्छाकरते हैं ऐसी गरमी में वे साधू पहाड़ की चोटीपर तप करते हैं और जब चारों ओर से घटा ही घटा चली आवें बादलों की लहरें उठें अर्थात अति सखत बारिश हो पछवाड़ों का धक्का लगे ऐसी वर्षा में भी वह साधू अपने बल को प्रकाश कर धैर्य के साथ उसके सन्मुख खड़े रहते हैं। जरा भी नहीं चिंगते अर्थात सर्व मेंह अपने ऊपर लेते हैं ऐसे वह साधू जो देह से स्नेह तोड़ते हैं और परमार्थ से प्रीती जोड़ते हैं उन को हम हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं।

जिनवाणीस्तुति । (मत्तगयंद छंद)

वीरहिमाचलतें निकसी, गुरु गौतमके मुखकुंडढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञानपयोनिधिमाहिं रलि, बहु भंगतरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदीप्रति, मैं अंजुली निजशीस धरी है॥१४

पयोनिधी = समुद्र। सारद = वाणी॥

१४—जैसे गंगा नदी हिमाचल से निकसी है इसी तरह महावीर स्वामी वही हुये हिमाचल और उन की वाणी वही हुई गंगा अर्थात महावीर स्वामी रूपीहिमाचल से जिन वाणी रूप गंगा निकसी है, गंगा तो गौ मुखकुण्ड में गिरी है और जिन वाणीने गौतम स्वामी का जो मुख वही हुआ कुण्ड उस में प्रवेश किया अर्थात गौतम स्वामी ने उस वाणी का अर्थ किया जैसे गंगा नदी पहाड़ को भेद कर चली है उसी तरह जिन वाणी ने मोह रूपी पहाड़ को तोड़ा जैसे गंगा की ठंडी हवा तपत को दूर करती है इसी प्रका जिन वाणी जड़ता रूप तपत को दूर करती है। जैसे गंगा नदी समुद्र में मिली है इसी प्रकार जिन वाणी ज्ञान रूपी समुद्र में रली है। जैसे गंगा में लहरें उठे हैं उसी प्रकार जिन वाणी में सप्त भंग रूपी लहरें हैं, ऐसी पवित्र जिन वाणी रूपी गंगा नदी को मैं दोनों हाथ सीस पर रखकर नमस्कार करता हुं।

या जगमंदिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्रीजिनकी धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी।
तो किहभांति पदारथपांति, कहां लहते रहते अविचारी।
याविधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं जिनवैन बड़े उपकारी॥१५॥

अनिवार = निवारा न जाय। शिखा = लौ। पांति = पंगती।

१५—इस जगत रूपी मंदिर में अज्ञान रूपी अंधकार जो निवारा न जाय अति छाया हुआ था। जो श्री जिनेन्द्र देव की वाणीरूप दीवे की लौ का प्रकाश नहीं होता तो वस्तुओं का समूह किस तरह देखते अर्थात् वस्तु का स्वरूप न जानने से अविचारी कहिये अज्ञानी रहते इसलिये साधु मुनि कहते हैं कि धन्य है धन्य है यह जिनवाणी बड़ी उपकारी है।

जिनवाणी, परवाणी दृष्टांत ।(कवित्त)

कैसे कर केतकी कनेर एक कहे जांय।
आक दूध गाय दूध अंतर घनेर है॥
पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की।
कहां काग वानी कहां कोयलकी टेर है॥
कहां भानु भारो कहां, आगिया विचारो कहां।
पूनों को उजारो कहां मावसअंधेर है॥
पच्छ छोर पारखी निहारो नेक नीके करि।
जैनवैन और वैन इतनों ही फेर है॥ १६॥

कनेर = कनयर। भानु = सूर्य। रीरी = पीतल। आगिया। पटबीजना॥

१६—केतकी का फूल और कनेर का फूल यद्यपि सफैदी में एक हैं परन्तु खुशबू में बड़ा फरक है; गौ का दूध और आक का दूध दोनों सफैद हैं परन्तु गुण में बड़ा फरक है। पीतल भी जरद है और सोना भी जरद है परन्तु कीमत में बड़ा फरक है काग भी बोलता है कोयल भी बोलती है परन्तु वाणी क मिठास में बड़ा फरक है सूर्य की चमक में और पटवीजने की चमक में बड़ा फरक है। पूर्णमासी की चान्दनी और अमावस्या के अंधेर में बड़ा फरक हैं हे सच्चे पारखी हो जरा पक्षपात को छोडकर देखो जैन वचन और अन्यमत के वचनों में इतना ही फरक है। अर्थात् अन्यमत वचन कनेर आक का दूध पीतल काग वाणी पटु-बीजना मावस को अंधेरी समान हैं, और जैन वचन उनके मुकाबले में केतकी, गाय का दूध, कंचन, कोयल की वाणी, सूर्य और पूर्णमासी की चांदनी के समान हैं।

वैराग्यकामना।

कब गृहवास सों उदास होय वन सेऊं।
वऊं निजरूप रोकूं गति मन-करी की॥
रहि हुं अडोल एक आसन अचल अंग।
सहि हूं परीसा शीत-घाम-मेघझरी की॥

सारंगसमाज आन कबधों खुजावैं खाज।
ध्यानदलजोर जीतूं सेना मोह अरी की।
एकलविहारी यथाजातलिंगधारी कब।
होहुं इच्छाचारी बलिहारी वा घरी की॥ १७॥

वेऊं=देखूं। सारङ्ग=हिरण। करि=हाथी। समाज=गिरोह।

१७—जे भव्यपुरुष संसार की दशा से उदासीन हैं वह हर समय ऐसा विचार करते रहते हैं कि वह घड़ी कब होगी जो मैं गृहस्थ से उदास होय वन में वास करूंगा, और अपने निजरूप को देखूंगा, और मनरूपी हाथी की चाल को रोकूंगा और अडोल एक आसन अचल अंग होकर सरदी गरमी चतुर्मास की परीसह सहूंगा और कब ऐसा समय होगा कि हिरणों की डार मेरे अचल शरीर को लकड़ी का ठूंठ समझ कर उस से आन कर खुजावेंगे। और मैं ध्यानरूपी दल से मोह रूपी वैरी की सेना को जीतूंगा। और जिस स्वरूप में जन्मा था अर्थात् नगन मुद्राधार अकेला अपनी इच्छानुसार विहार करूंगा उस घड़ी के ऊपर मैं बलिहारी जाऊं।

राग वैराग्य का अन्तर कथन।

रागउदै भोगभाव लागत सुहावनेसे।
विनाराग ऐसे लागें जैसे नाग कारे हैं।
रागहीसों पाग रहै तनमें सदीव जीव।
राग गयें आवत गिलानि होत न्यारे हैं॥
राग सों जगतरीति झूठी सब सांच जाने।
राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं॥
रागी विनरागी के विचारमें बड़ो ही भेद।
जैसे "भटा पथ्य काहु,काहुको बयारे हैं"॥ १८॥

भट्टा=बैंगन। बयारे=वाय करने वाले। पथ्य—पाचक।

१८—इस जीव को राग के उदय से सब संसार के भोग प्यारे लगते हैं, और जब राग नहीं रहता तब वह सर्प जैसे असुहावने लगते हैं, राग ही से यह जीव सदा शरीर में रमा रहता है, और राग भाव नष्ट होजाने पर इस शरीर से स्वय-

मेव ही गिलानी आने लगे है। राग ही से यह जीव जगत की सब झूठी रीति को सांची जाने है, राग मिट जाने पर सब असार दीखे है। इसलिये रागी और वीत-रागी के विचार में बड़ा भेद है। जैसे बैंगन किसी को हाज़िम है और किसी को बायल है ॥

भोगनिषेद मत्तगयंद। (छंद)

तू नित चाहत भोग नये नर, पूरवपुन्य विना किमि पैहै।
कर्मसंजोग मिलै कहिं जोग, गहै तब रोग न भोग सकै है॥
जो दिन चारको ब्योंत बन्यों कहुं, तो परि दुर्गतिमें पछतै है।
याहिते यार! सलाह यही है "गई कर जावो" निबाह न ह्वै है॥१९

पैहै=पावे। न ह्वै है=नहीं निभता॥

१९—हे जीव तू सदैव नये नये भोगों की इच्छा करता है परन्तु पूर्व पुण्य विन कैसे मिल सक्ते हैं। और कभी पूर्वपुण्य कर्म के उदय से भोगों का संयोग मिल भी जावे तो रोग होने से भोग नहीं सके है। और जो चन्दरोज भोग भोगे भी तो फिर दुर्गति में जाकर पश्चाताप करना पडे है। इसलिये हे मित्र हित की यही सलाह है कि इन भोगों की इच्छा को छोडो तेरा इनका साथ नही निभेगा।

देहस्वरूप।

मातपिता-रज-वीरजसों, उपजी सब सात कुधात भरी है।
माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेढ़ धरी है॥
नाहिं तो आय लगें अब ही, बक वायस जीव बचै न घरी है।
देहदशा यहि दीखत भ्रात! घिनात नहीं किन? बुद्धि हरी है॥२०॥

वायस—काग।

२०—यह देह कैसी है माता के खून और पिता के वीर्य से पैदा हुई है और सात कुधातु कहिये हाड़, मांस, रुधिर, चाम, चरबी, नस, और वीर्य यह गिलानी रूप वस्तु इस में भरी हैं और मक्खी के पर कैसी पतली खाल से बाहर से ढकी हुई है नहीं तो अभी काग वगैरा मांस भक्षी जीव आन कर चिमट जावें। जिस से जीव घड़ी भर भी न बचे। हे मित्र देह की यह दशा देख कर भी तुझे इस से घृणा नहीं आती। क्या तेरी अकल किसी ने हर लीनी।

संसारस्वरूप। (कवित्त)

काहूघर पुत्र जायो काहूके वियोग आयो।
काहू रागरंग काहू रोआ रोई करी है॥
जहां भान ऊगत उछाह गीत गान देखे।
सांझसमै ताही थान हाय हाय परी है॥
ऐसी जगरीत को विलोक न भयभीत होय।
हा! हा! नर मूढ़ तेरी मति कोने हरी है?।
मानुषजनम पाय सोवत बिहाय जाय॥
खोवत करोरनकी एक एक घरी है॥ २१॥

२१—इस संसार की दशा विचित्र है किसी के घर तो पुत्र पैदा हुआ खुशी मनावे हैं, किसी के घर मृत्यु हुई उस का रंज है किसी के घर में रागरंग गाते हैं किसी के घर में रोया पीटी पड़ी है। किसी के घर सुबह तो खुशी मना रहे थे शाम के समय उसी घर में हाय हाय करते हैं ऐसी जगत की उलटी रीत को देख कर हे मूर्ख तू भयभीत नहीं होता। अफसोस है तेरी अकल किसने हर लीनी। मनुष्य जन्म पाकर भी हे बेहया तू सोता ही रहे है अपना आत्म कल्याण नहीं करता सो एक एक घड़ी करोड़ों रुपये की खोवे है।

सोरठा।

कर कर जिनगुन पाठ, जात अकारथरे जिया।
आठ पहरमें साठ, घरी घनेरे मोलकी॥ २२॥

२२—हे प्राणी तू जिनेद्रदेव का भजन कर वरना आठ पहर की बहु मूल्य साठ घड़ी तेरी सब अकारथ जाय हैं।

कानी कौड़ी काज, कोरिनको लिख देत खत।
ऐसे मूरखराज, जगवासी जिय देखियें!॥ २३॥

दोहा।

कानी कौड़ी विषय सुख, भव दुःख करज अपार।
विना दिये नहिं छूटि है, बेशक लेय उधार॥ २४॥

२३—२४—एक फूटी कौडी के वास्ते जो क्रोडों रुपये की हुंडियें लिख देते हैं, वह जगत में बडे मूर्ख हैं कानी कोडी वही ठहरे विषय सुख और उन का फल वही ठहरा भव भ्रमण रूपी अपार करजा हे जीव बिना दिये नहीं छुटेगा बेशक उधार लेले। अर्थात् तुच्छ भोगों के विषय के लालच में आकर क्यों पाप करे है।

शिक्षा। (छप्पय)

दश दिन विषयविनोद, फेर बहु विपतिपरंपर।
अशुचिगेह यह देह, नेह जानत न आप पर॥
मित्र बंधु सनमंधि और, परिजन जे अंगी।
अरे अंध! सनबंध, जान स्वारथ के संगी॥
परहितअकाज अपनो न कर, मूढ़राज! अब समझ डर।
तज लोकलाज निजकाज कर, आजदाव है कहत गुर॥

विनोद=आनंद। गेह=घर॥

२५—हे मूर्ख जीव यह इन्द्रियों का सुख चन्दरोजा है। इस में लिप्त होने से फिर हमेशा के लिये महा दुःख है। यह तेरी देह अशुचि का घर है परन्तु तू मोह केकारण नहीं जानता। तेरे मित्र कुटम्बी सम्बन्धी जितने हैं सर्व स्वार्थ के साथी हैं। परहित के वास्ते तू अपना काम मत विगाडे। हे भोले! अब तू समझ कर इस से बाज़ आ। अपने निज काज के वास्ते लोककाज छोड, श्रीगुरु कहते हैं कि यह तेरे सुधार का अवसर है।

कवित्त।

जौलों देह तेरी काहू रोगने न घेरी जौलौं।
जरा नाहिं नेरी जासों पराधीन परि है॥
जौलों जमनामा वैरी देय न दमामा जौलौं।
मानै कान रामा बुद्धि जाइ न विगरि है॥
तौलों मित्र! मेरे निज कारज सवार लीजे।
पौरुष थकैंगे फेर पाछे कहा करि है॥

अहो आग आये जब झोंपरी जरन लागे।
कुआके खुदाये तब कौन काज सरि है॥ २६॥

नेरी=नजीक। जम=काल। दमामा=नकारा। रामा=स्त्री।

२६—हे जीव जबतक तेरी देह किसी रोग ने नहीं घेरी और जब लग बुढ़ापा नहीं आवे जिस से पराधीन होजावे जबतक काल रूपी वैरी अपना मान कर नकारा न बजावे अर्थात् मौत न आवे। और जब तक स्त्री तेरी आज्ञा माने अर्थात् जब तक तू तरुणहै। जब तक तेरी बुद्धि नष्ट न होय तब तक अपना कारज संभाल ले वरना जब पौरुष थक जांयगे फिर कुछ नहीं कर सकेगा। जब आग से झूपड़ी जलने लगे उस वक्त कूवा के खोदने से कौन काम सरे है।

सौ हि वर्ष आयु ताका लेखा कर देखा जब।
आधी तो अकारथ ही सोवत विहाय रे॥
आधी में अनेक रोग बालवृद्ध दशाभोग।
और हु संजोग केते ऐसे बीत जांयरे॥
बाकी अब कहा रही ताहि तू विचार सही।
कारजकी बात यही नीकै मन लाय रे॥
खातिरमें आवे तो खलासीकर हाल नहीं।
काल गाल परे है अचानक ही आयरे॥ २७॥

२७—हे जीव तू अपनी सौ वर्ष की उमर का लेखा करके देख आधी तो तेरी अकार्थ सोते ही जाती है। आधी में अनेक बीमारियों का भुगतना बाल अवस्था वृद्ध अवस्था,का भोगना और भी ऐसे ही अनेक दुःखदाई संयोग वीते हैं। अब तू यह विचार इस में बाकी कितनी रही, इसलिये तेरे मतलब की यही बात है। अगर तू समझें तो अब ही खलासी कर। वरना अचानक काल की गाल में चला जायगा।

बुढ़ापा।

बालपने बाल रह्यो पीछै गृहभार बह्यो।
लोकलाजकाज बांध्यो पापनको ढेर है॥

अपनो अकाज कीनों लोकनमें जस लीनो।
परभौ विसार दीनों विषै वश जेर है॥
ऐसे ही गई विहाय अलपसी रही आय।
नरपरजाय यह आंधेकी वटेर है॥
आये सेत भैया! अब काल है अवैया अहो।
जानी रे सयाने तेरे अजौं भी अंधेर है॥२८॥

२८—हे जीव तू बचपन में तो बालक रहा कुछ नहीं समझा, पीछे जवानी में घर के धंधों में लग गया लोक लज्जा के वास्ते बहुतेरा पापों का ढेर इकट्ठा किया अपना तो काम बिगाड़ा और लोगों में यश लिया। अपने परभव को भूल गया। और विषयों में लगा रहा इसी तरह बहुत सी आयु गुजर गई। जरा सी बाकी रही, हे जीव यह नर देह ऐसी है जैसे अंधेके हाथ में बटेर पकड़ी जावे तेरे श्वेत बाल आगए, अब काल आनेवाला है। हमने जानी हे भोले प्राणी तेरे अब तक भी अन्धेर है अर्थात् तू बूढ़ा फूस हो गया तुझे अपना आगन्त अब भी नहीं सूझता॥

मत्तगयंद। (सवैया)

बालपनै न संभार सक्यो कछु, जानत नाहिं हिताहितहीको।
यौवन वैस वसी वनिता उर, कै नित राग रह्यो लछमीको॥
यों पन दोइ विगोइ दिये नर, डारत क्यों नरकै निजजीको।
आये हैं सेत अजों शठ चेत "गई सुगई अब राख रहीको"॥२९॥

१९—हे भोले जीव तू बाल समय तो इस वास्ते अपना कुछ सुधार नहीं सकता कि तुझे हित अहित का ज्ञान नहीं था, तरुण अवस्था में स्त्री ने हृदय में वास किया अथवा लक्ष्मी के उपार्जन के लोभ में लगा रहा इस तरह अपनी दोनों अवस्था जाया करदी। हे नर अब तू अपने आप को क्यों नरक में डारे है अब तो तेरे सफेद बाल आगए अब तो चेत कर। गई सो तो गई अब बाकी को तो राख अर्थात् अब तो धर्म में तत्पर हो।

कवित्त।

सार नर देह सब कारजको जोग येह।

यह तो विख्यात बात सासनमें बचै है ॥
तामें तरुनाई धर्मसेवनको समय भाई।
सेये तब विषै जैसे माखी मधु रचै है ॥
मोहमद भोरा धन रामा हित जोरा।
योंही दिन खोये खाय कोदों जिम मचै है ॥
अरे सुन बौरे! अब आये सीस धौरे अजों।
सावधान होरे नर नरकसों बचै है ॥ ३० ॥

३२—हे जीव चौरासीलाख योनियोंमें यह नर भव ही सार है। अपनी आत्मा का उद्धार इसी भव में कर सक्ता है 'शास्त्रों में यह बात प्रसिद्ध है इस में भी जो जवानी है। धर्म सेवन करने की यही अवस्था है। परन्तु जैसे मक्खी शहद में रचे तैसे तैने विषय सेवन किये। और मोहरूप मद का भौरा हुआ स्त्रियों के वास्ते धन जोड़ता रहा। इसी प्रकार दिनों को व्यतीत किया जैसे कोदों खा कर मस्त हो जाय है। हे भोले अब तू सुन तेरे सिर पर धौले आगए अब तो तू सावधान हो इस तरह नरक जानेसे बचे है।

मत्तगयन्द (सवैया)

बाय लगी कि बलाय लगी, मदमत्त भयो नर भूत लग्यो ही।
वृद्ध भये न भजै भगवान, विषै विष खात अघात न क्यों ही ॥
सीस भयो बगुलासम सेत, रह्यो उर अंतर श्याम अजों ही।
मानुषभौ मुकताफल की लर, कूर तगाहित तोरत यों ही ॥३१॥

३१—हे प्राणी तुझे कोई खराब हवा लग गई या कोई बला चिमट गई या नशे में उन्मत्त भया या कोई पिशाच लिपट गया जो वृद्धहोने पर भी ईश्वरको याद नहीं करता अर्थात् भगवान का भजन नहीं करता। और विषयरूपी विष खाता हुआ तृप्त नहीं होता। तेरा सिर बुगले के समान सफेद हो गया। परन्तु तेरे हृदय की स्याही अब तक नहीं गई। यह तेरा मानुष्य जन्म मोतियों का हार है, इन्द्रियों का सुख वही भया तागा उस के वास्ते इस मोतियों के हार को क्यों तोडे है, अर्थात् इस विषय भोग के वास्ते इस नर भव को वृथा क्यों खोवे है

संसारीजीवका चिंतवन।

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज सरैं जियरा जी।
गेह चुनाय करूं गहना कछु, व्याहूं सुतासुत बांटिये भाजी॥
चिन्तत यों दिन जाहिं चले जम, आन अचानक देत धकाजी।
खेलत खेल खिलारि गये "उठरापी रही शतरंजकी बाजी"॥

३२—यहां कवि इस संसार की अवस्था दिखावे है कि देखो यह मनुष्य सदा यही चाहता रहता है कि मेरे किसी तरह धनकी प्राप्ति होय तो मेरे सारे कार्य सरैं मुझे सुख हो, हवेली चिनाऊं गहने बनाऊं पुत्र पुत्री के व्याह करूं उन में खूब भाजी बांटूं इसतरह चितवन करते करते समय बीत जाता है। अचानक काल आकर भक्षण कर लेता है। जिस प्रकार सतरञ्ज के खिलारी उठ जावें और बाजी ज्यों की त्यों लगी रहे इसी तरह यह मनुष्य काल को प्राप्त हो जाता है और दुनियां के काम सब ज्यों के त्यों पडे रह जाते हैं।

तेज तुरंग सुरंग भले रथ, मत्त मतंग उतंग खरे ही।
दास खवास अवास अटा धन, जो रकरोरन कोश भरे ही॥
ऐसे भये तो कहा भयो हे नर! छोर चले उठ अंत छरे ही।
धाम खरे रहे काम परे रहे, दाम गडे रहे ठाम धरे ही॥ ३३॥

३३—हे मनुष्य अगरचे तेरे दरवाजे सुन्दर घोडे, सुन्दर रथ मस्त हाथी खडे हैं और नौकर चाकर मकान बहुत कुछ हैं और अटूटधन जोड़ जोड़कर खज़ाने भरलिये हैं, हे भोले तू ऐसा भी हुआ तो क्या हुआ क्योंकि अन्तमें सब यहां ही छोड़ जाना है, सब मकान यहां ही खडे रहेंगे सब काम यहां ही पडे रहेंगे और जो धन जोड़ा है यहां ही धरा रहेगा।

अभिमाननिषेद। (कवित्त)

कंचनभंडार भरे और धन पुंज परे।
घने लोग द्वार खडे मारग निहारते॥
थान चढ़ि डोलत हैं झीने सुर बोलत हैं।

काहुकी हू ओर नेक नीके न चितारते ॥
कौलों धन खांगे कोऊ कहै थे न जाने तेऊ।
फिरैं पाय नांगे कांगे परपग झारते ॥
एते पै अयाने गरवाने रहैं त्रिभौ पाय।
धिक है समझ ऐसी धर्म ना संभारते ॥ ३४ ॥

३४—हे मनुष्य तेरे सोने के भंडार भरे हुए और धनों के ढेर लगे हुए हैं और बहुत से लोग तेरे द्वारे खडे, हुए तेरा रास्ता देख रहे हैं। तू सवारी पर चढ़ा हुआ घूम रहा है और बड़ी बारीक आवाज से बोलता है और किसी की तरफ भी जरा ख्याल नहीं करता। यह धन जिस के अभिमान में तू ऐसा मगरूर हो रहा है इस धन को कबतक खायेंगे इस धन के निबड़ जाने पर वही कहेंगे कि हम तो तुझे जानते भी नहीं। और पराये पग झाड़ता हुआ नंगे पैरों फिरेगा धिकार है तेरी समझ को। इतनी विभव पा कर भी मान के वश रहा और धर्म न संभाला ॥

देखो भरजोबन में पुत्रको वियोग भयो।
ताही विधि नारी हू निहारी काल मग में।
जे जे पुण्यवान जीव दीखत थे यान ही पै।
रंक भये फिरैं तेऊ पनही न पग में ॥
एते पै अभाग धनजीतब सों धरै राग।
होय न विराग जानै रहूंगो अलगमैं ॥
आंखिन सो देख अंध ससे की अंधेरी करै।
ऐसे राजरोगको इलाज कहा जगमें ॥ ३५ ॥

३५–इस संसारकी हालत को देखो कि जवानी की अवस्था में तो पुत्रका मरण हुआ और इसी तरह स्त्री भी काल के वश भई जो जो पुण्यवान जीव सवारियों पर दीखते थे वह रंक भये नंगे पैरों फिरे हैं। ऐसी हालत होते हुये भी हे निरभाग तू धन जीतव्य से राग करे हे जरा भी तुझे वैराग नहीं होता अपने मनमें यह जाने

है कि मैं इन दुःखों से अलग रहूंगा। अपनी आंखोंसे यह अवस्था देख कर भी हे मूर्ख शसे की तरह अन्धेरी धरे हैं याने जान बूझ कर अन्धा बने है। ऐसे भारी रोग का जगत में क्या इलाज।

दोहा।

जैनवचन अंजनवटी, आंजैं सुगुरु प्रवीन।
रागतिमिर तौहुन मिटै,बड़ो रोग लख लीन॥ ६६॥

६६—भगवान की वाणी वही ठहरा अञ्जन और श्री गुरु महामुनियोंका उपदेश वही ठहरा अंजन का आंजना उस से भी इस जगत के जीवों का राग रूपी अन्धेरा दूर न हो तो लाइलाज बड़ा भारी रोग जानो।

निजअवस्था वर्णन। सवैया ३१

जोई छिन कटै सोई आयुमें अवश्य घटै।
बूंद बूंद बीतै जैसे अंजुलीको जल है॥
देह नित छीन होय नैन तेज हीन होय।
जोवन मलीन होय छीन होत बल है॥
ढूकै जरा नेरी तकै अंतकअहेरी आवे।
परभौ नजीक जाय नरभौ निफल है॥
मिलकै मिलापी जन पूंछत कुशल मेरी।
ऐसी यों दशा में मित्र! काहे की कुशल है॥ ३७॥

३७—भव्य जीवोंके ऐसा विचार रहता है कि जितने दिन बीतते हैं वह मेरीआयु में घटते हैं जिस प्रकार हाथोंके उञ्जले में लिया जल बून्द बून्द गिर कर सब खतम हो जाय है इसी तरह एक एक दिन गुजर कर मेरी आयु खतम हो जायगी, यह देह मेरी दिन दिन दुबली होती जाय हैं, नेत्रों की तेजी घटती जाय है, योवन अवस्था मुरझाती जाय है, बल घटता जाय है बुढ़ापा नजदीक आता जाय है, और यमरूपी शिकारी आन कर ताक रहा है। परभव नजदीक होय है और नर भव निष्फलजाय है। मेरे मित्र मुझ से मिल कर मेरी कुशल पूछते हैं सो हे मित्रो ऐसी दशा में काहे की कुशल है॥

बुढ़ापा। मात्तगयंद (सवैया)

दृष्टि घटी पलटी तनकी छबि,बंक भई गति लंक नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयो परयंक लई है ॥
कांपत नार बहै मुख लार,महामति संगति छार गई है।
अंग उपंग पुराने परे,तिशना उर और नवीन भई है॥ ३८ ॥

बंक=बांकी। गति=चाल। लंक=कमर। परनी=ब्याहता। घरनी=स्त्री।परयंक =खाट। नार=गरदन।

३८—दृष्टि घट गई तन की छबी पलट गई चाल बांकी हो गई,कमर टेढ़ी होगई घर की स्त्री रूस रही मुहताज होकर खाट पर पड़ा है गरदन कांपे है मुख से राल पडे, है अकल जाती रही अंग उपंग सब पुराने होगए परन्तु तृष्णा और भी बढ़ गई।

कवित्त मनहर।

रूपको न खोज रह्यो तरु ज्यों तुषार दह्यो।
भयो पतझार किधौं रही डार सूनीसी ॥
कूबरी भई है कटि दूबरी भई है देह।
ऊबरी इतेक आयु सेरमाहिं पूनीसी ॥
जोबन ने विदा लीनी जराने जुहार कीनी।
हीनी भई सुधि बुधि सबै बात ऊनीसी ॥
तेज घट्यो ताव घट्यो जीतबको चाव घट्यो।
और सब घट्यो एक तिस्ना दिन दूनीसी ॥ ३९ ॥

तुषार=पाला।ऊबरी=बाकी।

३९—रूप का नाम निशान तक नहीं रहा शरीर ऐसा हो गया जैसा पाले का मारा पतझड़ हो कर वृक्ष शून्य हो जाय। कमर कुबड़ी हो गई, देह दुबली हो गई, उमर इतनी बाकी रह गई जैसे सेर रूई की पूनी कातते कातते १ बाकी रह जावे। और जवानी गुजर गई और बुढ़ापे ने आन कर जुहार करी अर्थात् बुढ़ापा आगया, अक़ल व तमीज़ घट गई, रोबदाब घट गया जिन्दगी का मज़ा फीका हो गया और सब कुछ घट गया परन्तु तृष्णा दिनोदिन दूनी बढ़ गई।

अहो इन आपने आभाग उदै नाहीं जानी।
सतगुरूवानी सार दयारस भीनी है॥
जोबनके जोर थिर जंगम अनेक जीव।
जाने जे सताये कछु करुना न कीनी है॥
तेई अब जीवरास आये परलोकपास।
लेंगे बैर देंगे दुख भई ना नवीनी है॥
उनहीके भयको भरोसो जान कांपत है।
याही डर डोकराने लाठी हाथ लीनी है'॥४०॥

४०—इस मनुष्य ने अपनी वदकिस्मती से दयारूपी सार रस की भरी हुई जिन वाणी को नहीं जानी, योवन के मद में स्थावर और जंगम अनेक जीव सताये किसी पर भी दया नहीं की, अब यह जान कर कि वह जीव पर भव में पास आकर अपना बदला लेने को दुःख देवेंगे, यह बात सदा से है। कोई नई नहीं कि दुश्मन जब मौका पाता है बदला लेता ही है, इसी ख्याल से यह बूढ़ा कांपता है। और उन के डर की मारी हाथ में लाठी ली है।

जाको इंद्र चाहैं अहमिंद्रसे उमाहैं जासों।
जीवमुक्तमाहिं जाय भौमल बहावै है॥
ऐसो नरजन्म पाय विषय विष खाय खोयो।
जैसे काच सांटे मूढ़ मानक गमावै है॥
मायानदी बूढ़ भीजा कायाबल तेज छीजा।
आया पन तीजा अब कहा बनि आवै है॥
तातें निज सीस ढोलै नीचे नैन किये डोलै।
कहा बढ़ बोलै वृद्ध वदन दुरावै है॥४१॥

४१—जिस मनुष्य जन्म को इन्द्र और अहमिन्द्र सब चाहैं जिस से कर्म रूपी मल धोय कर मोक्ष पावे ऐसा उत्तम मनुष्य जन्म पाय कर जो विषय सेवन में खोते

हैं वह मूर्ख कांच के बदले रत्न को खोते हैं। माया रूपी नदी में डूब भीगा काया का बल और तेज घट गया, अब तीसरी वृद्ध अवस्था आगई अब क्या बन आवे है। इसी लिये अपना सिर हिलाते हुये नीचे नयन किये डोले है ऐसा वृद्ध क्या बड़ा-बोल बोले जिसका बदन खुद ही हुर हुर कांपे है।

मत्तगयंद (सवैया)

देखहु जोर जराभटको,जमराज महिपतिको अगवानी।
उज्जलकेश निशान धरैं,बहु रोगनकी संग फौज पलानी॥
कायपुरी तजि भाजि चल्यो जिहिं,आवत जोवनभूप गुमानी
लूट लई नगरी सगरी, दिन दोयमें खोय है नाम निशानी॥४२॥

४२—यमराज रूपी राजा के अगवानी वृद्धता रूपी योद्धाका बल देखो, सफेद केसों रूपी झण्डा लिये रोगों रूपी फौज को पेल दिया। उस फौज को आती देख कर योवन रूपी अभिमानी राजा काय रूपी नगरी को छोड़ कर भाग गया। जरा रूपी फौज ने काया रूपी सारी नगरी लूट लई जरा सी देर में नाम निशान मिटा दिया।

दोहा।

सुमतीहित जोबन समय, सेवहु विषय विडार।
खलसांटें नहिं खोइये,जन्म जवाहर सार॥४३॥

४३—योवन समय सुमति को छोड़ कर विपय सेवन मत कर, विपय सेवनरूपी खलके वदले जन्म रूपी जवाहर मत खोवे।

कर्तव्यशिक्षा।

मनहर।

देव गुरु सांचे मान सांचो धर्म हिये आन।
सांचो ही वखान सुनि सांचे पथ आवरे॥
जीवनकी दया पाल झूंठ तज चोरी टाल।
देख न विरानी बाल तिसना घटावरे॥
अपनी बड़ाई परनिंदा मत करै भाई।

यही चतुराई मद मांसको बचाव रे ॥
साध खटकर्म साध संगतिमें बैठ वीर ।
जो है धर्मसाधनको तेरे चित चाव रे ॥ ४४ ॥

४४—हे जीव अगर तेरे मन में धर्म साधन करने का चाव है तो सच्चे देवगुरु को मान और सच्चा धर्म हिये में धारण कर और सच्चा ही उपदेश सुन और सच्चे ही मार्ग में चल जीवों की दया पाल झूठ बोलना चोरी करना छोड़ और पर स्त्री की तरफ बुरी नज़र से मत देख और तृष्णा को घटा अपनी बड़ाई और परनिन्दा मत करे मांस मधु का त्यागन कर। और जो षट कर्म श्रावक के करने योग्य हैं उन का साधन कर। और साधुओं की संगत कर।

सांचो देव सोई जामें दोषको न लेश कोई ।
वही गुरु जाके उर काहुकी न चाह है ॥
सही धर्म वही जहां करुना प्रधान कही ।
ग्रंथ जहां आदि अन्त एकसौ निबाह है ॥
यही जग रत्न चार इनको परख यार ।
सांचे लेहु झूठे डार, नरभौ को लाह है ॥
मानुष विवेक बिना पशुकी समान गिना ।
तातें यह ठीक बात पारनी सलाह है ॥ ४५ ॥

४५—सच्चा देव वही है जिस में दोष का लेश भी नहीं। और सच्चे गुरु वही हैं जिनके किसी प्रकार की भी इच्छा नहीं, सच्चा धर्म वही है जिस में दया ही मुख्य है, सच्चे ग्रन्थ वही हैं जिस में आदि से ले कर अन्त तक एकसा ही कथन है। कहीं भी विरोधी बचन नहीं जगत् में यही चार रत्न हैं हे मित्र इनकी परीक्षा कर सच्चे को ग्रहण कर झूठे को छोड़ मनुष्य जन्म पाने का यही लाभ है। क्योंकि बिना विवेक के मनुष्य पशु की समान है। इसलिये यह बात माननी योग्य है।

सांचे देवका लक्षण। छप्पय।

जो जगवस्तु समस्त, हस्ततल जेम निहारै ।
जगजनको संसार, सिन्धुके पार उतारै ॥

आदि-अंत-अविरोधि,वचन सबको सुखदानी।
गुन अनंत जिसमाहिं,दोषकी नाहिं निशानी॥
माधव महेश ब्रह्मा किधौं, वर्धमान कै बुद्ध यह।
ये चिंहन जान जाके चरण,नमोनमो मुझ देव वह॥४६॥

४६—जिनको जगत के सर्व पदार्थ हाथ की हथेली पर रक्खे समान दिखाई देते हैं, और जो जगत के जीवों को संसार रूपी समुद्र से पार उतारें, अर्थात् जन्म मरण रूपी दुःख से छुड़ावें,और जिनके विरोध रहित वचन आदि से अन्त तक सुख दाई हैं। और जिस में अनन्त गुण हैं किसी प्रकार के दोष का निशान भी नहीं, ब्रह्मा विष्णु, महेश, महावीर अथवा बुद्ध कोई भी होय जिस में यह गुण होय उस देव के चरणों को, मैं नमस्कार करूं हूं।

यज्ञहिंसक। कवित्त मनहर।

कहै दीन पशु सुन यज्ञके करैया मोहि।
होमत हुताशनमें कौनसी बड़ाई है?॥
स्वर्गसुख मैं न चहुं "देहु मुझे" यों न कहूं।
घास खाय रहूं मेरे यही मन भाई है॥
जो तू यह जानत है वेद यों बखानत है।
जगजरयो जीव पावै स्वर्गसुखदाई है॥
डारै क्यों न बीर यामें अपने कुटुंबही को।
मोह क्यों तू जारै जगदीशकी दुहाई है॥४७॥

हुताशन=अग्नि।

४७—जगत के दीन पशु कहते हैं कि हे यज्ञ के करणहारे हमें जो तू अग्नि में होमे है इस में तेरी क्या बड़ाई है। अर्थात् तेरे हाथ क्या आवेगा मुझे स्वर्ग सुखकी इच्छा नहीं, न मैं तेरे से कुछ मांगूं हूं घास खा कर अपना गुजारा करूं हूं मुझे तो यही प्रिय है। जो तेरे यही निश्चय है कि वेदों में यह बखाना है। कि जो जीव यज्ञ में जले हैं वह स्वर्ग में जाते हैं। तो हे मित्र तू उस में अपने कुटुम्ब को क्यों नहीं डालता मुझे क्यों जलावे है अर्थात् मुझे मत जला तुझे ईश्वर की दुहाई है।

सातों वारगर्भित षट्कर्मोपदेश। छप्पय।

अघ अंधेर आदित्य, नित्य स्वाध्याय करिज्जै।
सोमोपम संसार तापहर, तप करलिज्जे॥
जिनवरपूजा नेम करो, नित मंगल दायन।
बुध संजम आदरहु, धरहु चित श्रीगुरुपायन॥
निजवितसमान अभिमान विन, सुकर सुपत्तहि दानकर।
यों सुनि सुधर्म षटकर्म भज, नरभौ लाहो लेहु नर॥४८

४८—पाप रूपी अन्धेरे के दूर करने को सूर्य के प्रकाश समान जो स्वाध्याय सो नित्य कर। संसार रूपी तप्त के दूर करने को चन्द्र समान शीतल करने वाला जो तप सोकर। मंगल की देनेवाली जो भगवान की पूजा उसको नित्य करने का नियम कर।

हे बुद्धिमान श्रीगुरु के चरणों में चित देकर संयम का ग्रहण कर। अपनी वित्त समान अभिमान छोड़ कर सुख का करनेवाला सुपात्र को दान दे। यह जो षट कर्म श्रेष्ठ धर्मकहिये जिनशासनमें कहे हैं उन को ग्रहण करके मनुष्य जन्म सफल कर॥

दोहा।

ये ही छह विधि कर्म भज, सात बिसन तज बीर।
इस ही पैंडे पहुंचि है, क्रम क्रम भवजलतीर॥ ४९॥

४९—हे मित्र यह जो पट् कर्म ऊपर कहे उनको ग्रहण कर और जो सात कुविसन आगे कहेंगे उनका त्याग कर इसी मार्ग से धीरे धीरे संसार सागर से पार हो कर मोक्ष को पहुंचता है।

सप्तव्यसन।

जूआखेलन मांस मद, वेश्याविसन शिकार।
चोरी पर रमनीरमन, सातों पाप निवार॥ ५०॥

५०—जूवा खेलना, मांसखाना, मदरा पीनी, बेश्या से संगम करना, शिकार खेलना, चोरी करनी, परस्त्री से रमण करना यह सातों पाप करने छोड़।

जूआ निषेध। छप्पय।

सकल-पापसंकेत, आपदा हेत कुलच्छन।
कलहखेत दारिद्र देत, दीसत निज अच्छन॥
गुनसमेत जससेत, केत रवि रोकत जैसे।
औगननिकरनिकेत, लेत लख बुधजन ऐसे॥
जूआ समान इह लोकमें, आन अनीति न पेखिये।
इस विसनरायके खेलको, कौतक हू नहिं देखिये॥५१॥

औगण = अवगुण। निकेत = घर। लेतलख = देख लेते हैं।

५१—यह जूवा सकल पापों को मूल, विपत्ति की खान खोटे लक्षणों कर युक्त, झगडे की जड़ दरिद्रता का देनेवाला, अपनी आखों से दिखाई देता है। जैसे अपने प्रकाश रूपी गुणों कर युक्त जो सूर्य उसको केतु अपने अवगुण रूपी अन्धकार से रोके हैं ऐसे ही इस जूवे को बुद्धिमान पुरुष अवगुणों का घर जाने हैं। इस जूवे के खेल समान संसार में और कोई अन्याय नहीं दीखे है। इसलिये सब पापों का मूल जो जूवा उसका खेल भी नहीं देखना।

मांसनिषेद।

जंगम जियको नाश होय, तब मांस कहावै।
सपरस आकृति नाम, गन्ध उर घिन उपजावै॥
नरक जोग निरदई खाहिं, नर नीच अधरमी।
नाम लेत तज देत असन, उत्तमकुलकरमी॥
यह अशुची मूल सब तैं बुरो, कृमि कुलरास निवासनित।
आमिष अभक्ष याको सदा, बरजो दोष दयालचित॥५२॥

जंगम = चलनेवाले। आकृति = आकार। असन = भोजन आमिष = मांस।

५२—चलनेवाले जीवोंको मारिये तब मास होता है इसके छूने, देखने दुरगन्ध और नाम लेने से मन को घिण आती है नर्क में जानेवाले निरदई जिनके दया नहीं ऐसे क्षुद्र पापी इसे खाते हैं अगर उत्तमकुल धर्मात्मा पुरुषों के भोजन खाते हुए इस

का नाम भी लिया जावे तो उनके हिरदे में इतनी गिलानी पैदा होती है कि वह भोजन करना छोड देते हैं यह संसारकी सारी वस्तुओं में महा अपवित्र न छूनेवाला सब से बुरा अशुचिता को जड़ कोड़ोंके समूह का स्थान है इस मांस अभक्ष को महा दोषित जान दयाल यानि दया है जिस में जिन के ऐसे श्रीगुरु ने इसका खाना सदा निषेध किया है।

मदरानिषेध। दुमिला (सवैया)।

कृमिरास कुवास शरीर दहै, शुचिता सब छीवत जाय सही।
जिसपानकिये सुधि जात हिये, जननीजनजानत नार यही॥
मदिरा सम और निषिद्ध कहा, यह जान भले कुलमें न गही।
धिकहै उनको वह जीभ जलो, जिन मूढ़नके मत लीन कही॥५३॥

कृमि=कीडे। पान=पीना। मदरा=शराव। लीन=भली।

५३—शराब कीड़ों यानि जीवों (जिरमो) का समूह है जिस के पीने से कलेजा सड़ जाता है फेफड़ा गल जाता है जिस के छूने मात्र से सब पवित्रता जाती रहती है जिसके पीने से होश नहीं रहती नशे में माता को भी स्त्री जान भोगना चाहे है शराब समान और खोटी वस्तु कहां यही जान कर भले कुलों में इसको ग्रहण नहीं किया उन पुरुषों को धिक्कार है और वह जीभ जलो जिन मूर्खों के मत में इसे पीना जायज कहा है।

वेश्यानिषेध।

धनकारक पापनिप्रीति करे, नहिं तोरत नेह यथा तृणको,
लव चाखत नीचनके मुखकी, सुचिता सब जाय छिये जिनकों।
मद मांस बजारनि खाय सदा, अंधले विसनी न करें घिनको।
गनिका संग जे सठ लीन भये, धिक है! धिक है! धिक है तिनको

लव=होंठ। तृण=तुनका।

५४—रण्डी धन के वास्ते प्रीति करती है वरना तुनके को तरह मुहब्बत तोड़ डालती है और नीच पुरुषों के होठों को चाखती है अर्थात् उनके मुखसे मुख मिलाती है इनके छूनेमात्र से शरीर की सर्व सुखता जाती रहती है अर्थात् सोजाक आतशक हो जाती है जिस से नींम की टहनी हिलानी पड़ती है यानि मक्खियां झोलनी पड़ती

हैं बाजार की शराब माजून आदि नशे और मांस की खानेवाली जो रण्डी उस से अन्ध हुए हुए व्यसनी नफरत नहीं करते जे मूर्ख वेश्याके संग लीन रहते हैं धिक्कार है धिक्कार है तिनको।

आखेटनिषेध। कवित्त मनहर।

काननमें बसै ऐसो आन न गरीब जीव।
प्राननसों प्यारे प्रान पूंजी जिस यहै है॥
कायर सुभाव धरै काहू से न दीन द्रोह करै।
सबहीसों डरै दांत लिये तृन रहै है॥
काहूसों न रोष पुनि काहूपै न पोष चहै।
काहू के परोष परदोष नाहिं कहै है।
नेकुस्वाद सारिवे को ऐसे मृग मारिवे को।
हा हा रे! कठोर तेरे! कैसे कर बहै है॥ ५५॥

कानन=वन आन=और परोप=गीवत।

५५—मृग सम्रान और कोई गरीव जानवर नहीं यह विचारे वन यानि जंगलों में रहते हैं उनके प्राणही हैं प्यारी पून्जी जिनके पास दीन है स्वभाव जिनका सरल चित्त जरा भी फरेब नहीं जानते सब से डरते हैं दांतों में तृण लिये रहते हैं किसी से भी द्वेष नहीं रखते किसीसे खाना नहीं मांगते किसी को आगे पीछे दोष नहीं कहते यहां श्रीगुरु कहे हैं कि जरा से जिव्हा के स्वाद के वास्ते ऐसे गरीव हिरणों के मारने को हायरे कठोर चित्त तेरे हाथ कैसे चले हैं।

चोरीनिषेध (छप्पय)

चिंता तज न चोर, रहै चौंकायत सारैं।
पीटैं धनी विलोक, लोक निर्दई मिलि मारैं।
प्रजापाल करि कोप, तोप पर रोप उड़ावै।
मरै महा दुख देख अंत नीची गति पावै।

वहु विपतिमूल चोरीविसन, प्रगट त्रास आवे नजर।
परवित अदत्त अंगार को नीतिनिपुन परसै न कर ॥ ५६ ॥

प्रजापाल=राजा। रोप=खड़ाकर। परवित=पराया धन। कर=हाथ।

५६—चोर के मन से कभी भी दहशत नहीं हटती हर जगह चारों तरफ देखता ही रहता है और अगर चोर को धनी देख पावे तौ खूब ही पीटता है और राजा कोप होकर तोप के सनमुख खड़ा कर उडादेवे है चोर महा दुःख भोग कर मरता है और नरक में जाता है यह चोरी का ऐब महा विपत की जड़ है जिस के दुःख जाहरा दिखाई देते हैं चोरी के पराये धन को नीतीवान् अंगार समान जान हाथ से भी नहीं छूते ॥

परस्त्री सेवन निषेध।

कुगति बहन गुनगहन दहन दावानलसी है।
सुजसचंद्रघनघटा, देहकृशकरन छई है॥
धनसर सोखन धूप, धरमदिन सांझ समानी।
विपतभुजंगनिवासबांबई वेद बखानी॥
इहिविधि अनेक औगुणभरी, प्रानहरनफांसी प्रबल।
मत करहु मित्र! यह जान जिय, परवनितासों प्रीति पल ॥५७॥

दावानल=अग्नी। सर=तालाव। भुजंग=सांप। वांवई=सांप का घर॥

५७—परस्त्री कैसी है कुगति की बहन है और गुणों के समूह को भसम करने के वास्ते वन की अग्नि के समान है सुजस रूपी चन्द्रमा के आछादन करने को वादर की घटा समान है देह को कृश करने वाली धन रूपी सरोवर को सोखत करने को धूप समान है। धर्म रूपी दिन के अस्त करने को सांझ समान है। विपत रूपी सांप के निवास करने को बांवी शास्त्रों में कही है। इस प्रकार अनेक औगुणों की भरी प्राणों के हरने वाली प्रवल फांसी है! हे मित्र ऐसी जानकर परस्त्री से एक पल भी प्रीति मत करो॥

स्त्रीत्यागप्रशंसा। (दुर्मिल सवैया)

दिवि दीपकलोय बनी वनिता, जड़जीव पतंग तहां परते।
दुख पावत प्राण गवावत हैं, बरजे न रहैं हठसों जरते॥
इहिभांति विचक्षण अक्षण के वश, होय अनीति नहीं करते।
परतियलखिजेधरतीनिरखैं, धनि हैं! धनिहैं!धनि हैं!नरते।५८

दिव = रोशन। वनिता = स्त्री। विचक्षण = चतुर। अक्षण = आंख॥

५८—परस्त्री दीपक की लौ के प्रकाश समान है मूर्ख जीव वही ठहरे पतंग वह उस पर पड़ते हैं, दुःख पाते हैं और प्राण खोते हैं मने करने से बाज नहीं आते हठ से उसी में जलते हैं, इसी लिये चतुर पुरुष देख कर आंखों के वश होकर अनीति नहीं करते अर्थात् परस्त्री गमन नहीं करते। श्रीगुरु कहते हैं कि जो पुरुष परस्त्री को देख करके अपनी नजर नीचे करलेते हैं जगत में वह धन्य हैं॥

दिढ शीलशिरोमन कारजमें, जगमें यश आरज तेइ लहैं।
तिनके युग लोचन वारिज हैं, इहिभांत अचारज आप कहैं॥
परकामनि को मुखचंद चितै, मुंद जाहिं सदा यह टेव गहैं।
धनि जीवन है तिन जीवन को, धनि मायउन्हैं उरमाहिं वहैं॥५९॥

आरज = श्रेष्ट। वारिज = कमल।

५९—जो पुरुष अपने शीलपालने में शिरोमणी हैं, वही संसार में उत्तम यश लेते हैं आचार्य्य कहते हैं कि उन पुरुषों के दोनों नेत्र वही ठहरे कमल परस्त्री के मुख रूपी चन्द्रमा को देख कर उन के कमल रूपी नेत्र बन्द होजाय हैं ऐसे पुरुषों का जीवना धन्य है। धन्य है वे माता जो ऐसे सुपुत्रों को गर्भ में धारण करे हैं।

कुशीलनिन्दा। (मतगयन्द सवैया)

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँसैं विगसैं बुधिहीनबडेरे।
जूंठनकी जिमि पातल पेखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे॥
है जिनकी यह टेव सदा, तिनको इस भौ अपकीरति हेरे।
ह्वै परलोकविषै विजली करै शतखंड सुखाचलकेरे॥६०॥

—कूकर=कुत्ता । शतखंड=सौ टुकड़े, । सुखाचल=सुख का पहाड़। है=होय।

६०—जो निर्लज्ज पुरुष परस्त्री को देख कर हंसे और खुश हों वह पुरुष बड़ेमूख हैं और ऐसे दिखाई देते हैं जैसे झूठी पत्तल को देख कर कुत्ते बड़े खुश होते हैं। जिन पुरुषोंको ऐसी आदत पड़जाती है उन की इस भव में बड़ी निंदा होती है और पर स्त्री परलोक में बिजली समान है। जो सुख रूपी पहाड़ के सौ टुकड़े करती है।

व्यसनसेनेवाले।(छप्पय)

प्रथम पांडवा भूप, खेलि जूआ सब खोयो।
मांस खाय बकराय, पाय विपता बहु रोयो॥
विन जाने मदपानजोग, जादोंगन दज्झे।
चारुदत्त दुख सहे, वेसवा विसन अरुज्झे॥
नृप ब्रह्मदत्त आखेटसों, द्विज शिवभूति अदत्तरति।
पररमनिराचि रावन गयो, सातों सेवत कौन गति?॥ ६१॥

आखेट=शिकार खेलना। अदत्त=चोरी। पररमनी=परस्त्री। व्यसन=ऐब।

६१—देखो पांडुओं ने जुआ खेल सर्व राज सम्पदाखोई। और मांस खाकर राजा बक बहुतदुःख पाकर रोया। बिना जाने शरावपीकर सर्व यादव जले। और चारुदत्त सेठ ने वेश्वा में लिप्त होकर महा कष्ट भोगा। ब्रह्मदत्त राजा शिकार खेल कर और शिव भूत ब्राह्मण चोरी के धन कर और रावण पर स्त्री में रचने कर नष्ट भये सो जो पुरुष इन सातों विसनों ही का सेवन करे उस के दुःख का कहां ठिकाना।

दोहा।

पाप नाम नरपति करै, नरक नगरमें राज।
तिन पठये पायक विसन, निजपुरवसती काज॥६२॥
जिनकैं जिनके वचनकी, बसी हिये परतीत।
विसनप्रीति ते नर तजौ, नरकवास भयभीत॥६३॥

६२—६३—श्रीगुरु कहते हैं कि हे जगत् के जीवो पाप वही ठहराराजा और नरक ठहरा नगर उस में पाप राजा राज्य करे है। उस ने अपनी नगरी की आवादी वढाने के लिये व्यसन रूपी प्यादे भेजे हैं। सो जिन के हृदय में जिनेन्द्र देव के वचनों की प्रतीति वसे है और नरकों के दुखों से भयभीत हैं वह नर व्यसनों की प्रीति छोडो॥

कुकविनिन्दा। (मत्तगयन्द सवैया)

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गमाई।
सीख बिना नर सीखत हैं, बनिता सुख सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अंध असूझन की अंखियां मध मेलत हैं रज रामदुहाई॥६४॥

६४—मोह के उदय से सारा संसार अंधा हो रहा है सहज ही लोगों ने लाज खोदी है। और विना सिखाये ही नर स्त्रियों के सुख सेवन की चतुराई सीख रहे हैं। उस पर भी कुकवियों ने और रस काव्य रचे हैं। उन कवियों की कठोरता का क्या कहना है। वह कवि कैसे हैं कि अंधों की आंखों में और रेता डालते है दुहाई रामकी है॥

कंचन कुंभनकी उपमा, कहि देत उरोजनको कविवारे।
ऊपर श्याम विलोकत कै, मनिनीलमकी ढकनी ढँकि छारे॥
यों सतबैन कहैं न कुपंडित, ये युग आमिषपिंड उघारे।
साधन झार दई मुंह छार, भये इस हेत किधौं कुच कारे॥६५

कुंभ=कलश। उरोचन=स्त्रीके स्तन। विलोत=देखना। आमिख=मांस।

६५—खोटे कवि स्त्री के स्तनों को स्वर्ण के कलशों से उपमा देते हैं। और उस के ऊपर कालेपन को नीलम के ढकने ढके हुये कहते हैं। सो ऐसी उलटी वात कहने का बड़ा अफसोस है। वह कुपंडित सत्य २ यों क्यों नहीं कहते कि वह दो कुच दो मांस के पिंड हैं। और साधु जनों ने जो मोह रूपी राख को तजा सो उन के ऊपर डालदी इस से वह काले होगये॥

हे विधि! भूल भई तुमतें, समुझे न कहां कशतूरि बनाई।
दीन कुरंगनके तनमें, तृण दंत धरे करुना नहिं आई॥

क्यों न करी तिन जीभन जे, रसकाव्य करें परको दुखदाई।
साधु अनुग्रह दुर्जन दंड, दुहू सधते विसरी चतुराई ॥६६॥

कुरंग = हिरण। तृण = घास। अनुग्रह = कृपा।

६६—हे ब्रह्मा तुम से बड़ी गलती हुई तुम समझे नहीं तुम ने गरीब हिरणों के शरीर में जो दीन दांतों में तृण लिये रहते हैं कस्तुरी क्यों बनाई। तुम्हे दया न आई कि ऐसे दीन जीवों को कस्तुरी के लालच से पापी पुरुष मारेंगे। कस्तुरी उन की जीभ में क्यों न करी जो पर को दुखदाई रस काव्य बनाते हैं अगर ऐसा करते तो दोनों बात सध जाती कि साधु जनों का उपकार और दुष्टों को दंड होजाता। सो खबर नहीं तुम्हारी चतुराई कहां गई॥

मनरूपहाथी। (छप्पय)

ज्ञान महावत डारि, सुमति सांकल गहि खंडै।
गुरु अंकुश नहिं गिनै, ब्रह्मव्रत वृक्ष विहंडै॥
करि सिधांत सर न्होनि, केलि अघ रज सों ठानै।
करन चपलता धरैं, कुमति करनी रति मानै॥
डोलत सुछन्द मदमत्त अति, गुण-पथिकन आवत उरै।
वैराग्य खंभतें बांधि नर! मनमतंग विचरत बुरै॥६७॥

सर = तालाब। रज = मट्टी। करनी = हथनी। पथिक = मुसाफर। मतंग = हाथी

६७—ज्ञान रूप हथवान को पछाड़ कर सुमति रूप सांकल को तोड़े है। और गुरु रूप अंकुश को न मान कर ब्रह्मचर्य व्रत रूप वृक्ष को तोडे है। और सिद्धान्त रूपी सरोवर में स्नान कर पाप रूप धूरत से केल करे है। और चपलता रूप कान धरें है। और कुमति रूप हथनी से राचे है। और अपने जोर में मस्त हुआ वे रोक फिरे है। गुण रूपी मुसाफर जिस के सामने आता हुआ डरे है। श्रीगुरु कहे हैं कि हे नर ऐसे मन रूप हस्ती को वैराग रूप खंभ से वान्ध। क्यों कि मन रूप हस्ती का विचरना बुरा है॥

गुरु उपकार (कवित्त मनहर)

ढईसी सराय काय पंथी जीव वस्यो आय,

रत्नत्रय निधि जापै मोख जाको घर है।
मिथ्यानिशि कारी जहां मोहअंधकार भारी,
कामादिक तस्कर समूहनको थर है॥
सोवै जो अचेत सोई खोवै निज संपदाको,
तहां गुरु पाहरू पुकारैं दया कर है।
गाफिल न हूजे भ्रात! ऐसी है अँधेरी रात,
जाग रे बटोही! इहां चोरन को डर है॥६८॥

निश=रात। तस्कर=चोर। घर=स्थान। पाहरू=पहरेदार॥

६८—टूटी फूटी काया रूपी सराय में जीव रूपी मुसाफर वसा हुआ है रत्न त्रय रूपी दौलत जिस के पास है और मोक्ष उस का घर है। मिथ्या रूपी अंधेरी रात है और मोह रूपी सखत आंधी चलरही है। और कामादिक चोरों की मंडली का स्थान है। ऐसी हालत में जो मनुष्य अचेत सोवे है। सो अपनी दौलत को खोवे है। ऐसे मौके पर गुरु रूपी पहरेदार ऐसे पुकारे हैं कि हे मुसाफर ऐसे मौके पर गाफिल न हो। जाग यहां चोरों का बड़ा डर है॥

कषाय जीतनेका उपाय। (मत्तगयन्द सवैया)

छेमनिवास छिमा धुवनी विन, क्रोध पिशाच उरै न टरैगो।
कोमलभाव उपाव विना, यह मान महामद कौन हरैगो।
आर्जवसार कुठार विना, छलबेल निकंदन कौन करैगो।
तोषशिरोमनि मंत्र पढ़े विन, लोभ फणी विष क्यों उतरैगो॥६९॥

छेम निवास= शांति का घर। धुवनी=धनी। निकन्दन=उखेड़ना। फणी=सांप॥

६९—शांति रूप घर में जबतक छिमा रूपी धूनी न दीजायगी तब तक क्रोध रूपी भूत हृदय से कैसे निकल कर जावेगा। और कोमल भाव विना मान रूपी महा मद को कौन हरेगा। सरलता रूप श्रेष्ठ कुल्हाड़े विना छल रूपी वेल को कौन काटेगा सन्तोष रूपी मंत्र पढे विना लोभ रूपी सर्प का जहर कैसे उतरेगा॥

मिष्टवचन।

काहेको बोलत बोल बुरे नर! नाहक क्यों जस धर्म गमावै।
कोमल वैन चवै किन ऐन, लगै कछु है न सवै मन भावै॥
तालु छिदै रसना न भिदै, न घटै कछु अंक दरिद्र न आवै।
जीभकहैजिय हानि नहीं, तुझजी सब जीवनकोसुखपावै॥७०॥

७०—हे पुरुष किसवास्ते कुवचन बोल कर नाहक अपना यश और धर्म क्यों खोवे है कोमल वचन क्यों नहीं बोलता जिस के बोलने में कुछ भी नहीं लगता। और सब को प्रिय लगे। जिस के बोलने से तालु छिदे नहीं जवान विन्धे नहीं शरीर घटे नहीं दरिद्र आवे नहीं। जीभ कहे हे जिया इस में तेरी कुछ हानी नहीं सब जीवों की आत्मा सुख पावे हैं॥

धैर्यधारणोपदेश। (कवित्त मनहर)

आयो है अचानक भयानक असाताकर्म,
ताके दूर करवे को बली कौन अहिरे।
जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप,
तेई अब आये निज उदै काल लहरे॥
एरे मेरे वीर! काहे होत है अधीर यामें,
कोऊ को न सीर तू अकेलो आप सह रे।
भये दिलगीर कछु पीर न विनसि जाय,
याही तें सयाने तू तमाशगीर रह रे॥७१॥

७१—अचानक भयानक असाता कर्म उदय आया उस के दूर करने को कौन बली है। जेजे मन में आये ते पुण्य पाप तैं आप कमाये सोई अब उदय आये हैं देख। अरे मेरे मित्र अब अधीर क्यों होता है। इस में किसी की भी साझ नहीं तू अकेला आप ही सहरे। दलगीर होने से कुछ पीड़ नहीं हटेगी। इसोलिये हे बुद्धिमान तू इन कर्मों का तमाशा देख॥

होनहारदुर्निवार ।

कैसे कैसे बली भूप भूपर विख्यात भये,
वैरीकुल कांपे नेकु भौंहोंके विकारसों ।
लंघे गिरि सायर दिवायर से दिपैं जिनों,
कायर किये हैं भट कोटिन हुँकारसों ॥
ऐसे महामानी मौत आये हू न हारमानी,
उतरे न नेकु कभू मानके पहार सों ।
देवसों न हारे पुनि दाने सों न हारे और,
काहूसों न हारे एक हारे होनसहारसों ॥७२॥

लंघे=पार होगये । गिर=पहाड़ । सायर=समुद्र । दिवायर=सूर्य ॥

७२—कैसे कैसे बली राजा पृथिवी पर मशहूर हुये हैं । जिन की आंखों की भौंह देखते ही वैरीयों के समूह कांपें जिन्होंने समुद्र और पहाड़ उलंघन किये सूर्य समान तेज जिन का और जिन्होंने क्रोडों सूरमे अपनी हुंकार से डरा दिये । ऐसे महामानी जो मौत से भी नहीं डरे और कभी भी मान रूप पहाड़ से नहीं उतरे । देवोंसे न हारे और दानोंसे भी न हारे और किसीसे भी नहीं हारे लेकिन होनहारसे वह भी हारे हैं॥

कालसामर्थ्य ।

लोह मई कोट कैई कोटन की ओट करो,
कांगुरे न तोप रोपि राखो पट भेरिकै ।
चारूं दिश चेरागन चौसक ह्वै चौकी देवें ।
चहुं रंग चमू चहुं ओर रहो घेरिकै ॥
तहां एक भौंहिरा बनाय बीच बैठो पुनि,
बोलो मत कोऊ जो बुलावै नाम टेरि कै ।

ऐसी पर पंच पांति रचो क्यों न भांति भांति,
कैसे हू न छोर जभ देख्यो हम हेरि कै॥७३॥

पट = किवाड़। चेरांगण = नौकर। यम = काल॥

७३—लोहे के कई एक कोटों की ओट करो और ऊपर कांगुरे कांगुरे तोप रक्ख कर किवाड भेड लेवे। और नौकर चौकस होकर चारों तरफ पहरा देवें। और चतुरंग सेना चारों तरफ से घेर राखे ऐसे स्थान में एक भंवरा बना कर उस में बैठ जावे और यह कहदे कि अगर कोई नाम लेकर भी बुलावे तौ भी मत बोलो। अगर कोई ऐसी माया और छल की तरह तरह की पंक्ति क्यों ना रचे तौ भी काल नहीं छोडे है हमने। यह निश्चय देखा है॥

मत्तगयन्द सवैया।

अंतकसों न छुटै निहचै पर, मूरख जीव निरन्तर धूजै।
चाहत है चितमें नित ही सुख, होय न लाभ मनोरथ पूजै॥
तू पण मन्द मति जग में आसवन्धो दुख पावक भूजै।
छोड़ विच्छनये जड़ लच्छ, धीरज धारि सुखी किन हूजै॥७४॥

अन्तक = मौत। धूजे = कांपे। पूजै = मिले। पावक = आग। भूजै = जले। विचक्षण चतुर। जड़ = मूर्ख॥

७४—निश्चय सेती मौत से कोई नहीं बचेगा। यह मूर्ख जीव निरंतर योंही कांपे है और अपने मन में सदा सुख चाहे है। परन्तु लाभ और मनोरथ नहीं मिलता है भाई तू मढ हुआ हुआ जगत में आसा रूपी अग्नि में क्यों जले है। हे चतुर यह लक्षण छोड़ कर धीर्य धार कर सुखी क्यों नहीं होता॥

धैर्यशिक्षा।

जो धनलाभ लिलाट लिख्यो, निज पुण्य पदार्थ के अनुसारै।
सो मिल है कछ फेर नहीं, मरुदेशके ढेर सुमेर सिधारै॥
घाट न बाढ़ कहीं वह होय, कहा कर आवत सोच विचारै।
कूप किधौं भर सागर में नर गागर मान मिलै जल सारै॥७५॥

७५—अपनी किस्मत में अपने पुण्यके अनुसार जो धन का लाभ लिखा ह सोही मिलेगा इस में कुछ भी शक नहीं । चाहे बागड़ के रेतले टिव्बों में जाओ चाहे सोने के पर्वत पर जावो । चाहें कूवें से भर चाहे समुद्र से भर हे नर गागर में उतना ही जल आवेगा । कहीं भी कम जियादा नहीं होता क्यों सोच विचार करे है ॥

आशानदी (मनहर कवित्त)

मोहसे महान ऊंचे परवतसों ढर आई,
तिहूं जग भूतल को पाय विसतरी है।
विविध मनोरथमें भूरि जल भरी बहै,
तिसना तरंगनिसों आकुलता धरी है ॥
परैं भ्रम भौंर जहां रागसो मगर तहां,
चिंता तटतुंग धर्मवृच्छ ढाय परी है।
ऐसी यह आशा नाम नदी है अगाध ताको,
धन्य साधु धीरजजहाज चढ़ि तरी है ॥७६॥

भूतल=पृथिवी । भूर=अधिक । तट - किनारे ॥

७६—मोह रूपी ऊंचे पहाड़ से ढलकर आई तीन गगन रूपी धरती पर विस्तरी है । और तरह तरह के मनोर्थ रूपी जल से भरी हुई वहे है और तृष्णा रूपी तरंगें जिसमें उछल रही हैं जिस नदी में भ्रम रूपी भंवर और राग रूपी मगरमच्छ हैं चिन्ता रूपी किनारे हैं धर्म रूपी ऊंचे वृक्षों को गिराती है ऐसी आशा नाम अथाह नदी है । धन्य है उन साधुओं को जो ऐसी आशा नाम अथाह नदी को धीरज रूपी जहाज में सवार होकर तिरगये ॥

महामूढ़ वर्णन ।

जीवन कितेक तामें कहा बीत बाकी रह्यो,
तापै अंध कौन कौन करै हेर फेर ही।
आप को चतुर जानै और न को मूढ़ मानै,

सांझ होन आई है विचारत सवेर ही ॥
चामही के चखन सो चितवै सकल चाल,
उरसों न चौधें कर राख्यो है अंधेर ही।
बाहै बान तानकै अचानक ही ऐसो यम,
दीसत मसान थान हाड़न को ढेर ही ॥७७॥

७७—अव्वल तो जीवना ही थोड़ा है उसमें से भी गुजर कर जरासा ही बाकी रह गया तिस पर भी इस थोडे से जीव ने पर कैसे २ हेरफेर करे है। आप को अकलमन्द जाने दूसरों को बेवकूफ माने श्याम होजाने को भी सुबह ही माने है सारी वस्तुओं को आंखों से देखे है ह्रदय से नहीं देखता। अन्धेर कर रक्खा है। यम राज ऐसा अचानक तीर तान कर मारेगा। कि मरघट में हाडों का डेर दिखाई देगा॥

केती बार स्वान सिंघ सांबर सियाल सांप,
बानर सारंग शशा सूरी उदरे परचो ।
केती बार चील चमगादर चकोर चिरा,
चक्रवाक चातक चँडूल तन भी धरचो ॥
केती बार कच्छ मच्छ मेंडक गिंडोला मीन,
शंख सीप कौडी ह्वै जलूका जलमें तिरचो ।
कोऊ कहै "जायरे जनावर!" तो बुरो मानै,
यों न मूढ जानै मैं अनेक बार ह्वै मरो ॥७८॥

७८—अनेक बार मनुष्य, कुत्ता, शेर, साम्भर गीदड़, सांप, बानर, मृग, शशा शूरी, चील, चमगादड़, चकोर, चिड़ा, चकवा, पपिय्या, चंडोल कच्छ, मच्छ मींडक, गैंडोया मच्छो, शंख, शीप, कौडी, जोक आदि अनेक बार भया। अगर कोई मनुष्य को जानवर कहदे तो निहायत खफा होता है भोला यह नहीं जानता कि मैं अनेक बार जानबर हो हो कर मरा हूं॥

दुष्ट कथन। (छप्पय)

करि गुण अम्रतपान, दोष विष विषम समप्पै।

बँकचाल नहिं तजै, जुगल जिह्वा मुख थप्पै ॥
तकै निरन्तर छिद्र, उदै परदीप न रुच्चै।
विन कारण दुख करै, वैरविष कबहुं न मुच्चै ॥
वर मौनमंत्रसों होय वश, संगत कीये हान है।
बहु मिलत बान यातैं सही, दुर्जन सांप समान है ॥७९॥

७९—गुण रूपी अमृत को पीकर दोष रूपी भयानक जहर को उगले है। अपनी बांकी चाल नहीं छोडता। और मुख में दो जीभ राखे है। अर्थात् कभी कुछ कहे कभी कुछ कहे। और पराये छिद्र हेरता रहता है। और दूसरों को खुशहाल देख कर कभी भी ठंडा नहीं होता अर्थात् जलता रहता है विना कारण ही दूसरों को दुःख देता रहता है। वैर रूपी विष कभी नहीं छोड़ता। ऐसे खोटे पुरुष के सामने चुप रहना ही वेहतर है। ऐसे की संगत करने से हानि है। क्यों कि ऐसे दुर्जन का स्वभाव सांप से बहुत मिलता है। इस लिये दुर्जन सांप समान है ॥

विधातासों तर्क। (मनहर कवित्त)

सज्जन जो रचे तो सुधारस सों कौन काज,
दुष्ट जीव किये कालकूटसों कहा रही।
दाता निरमापे फिर थापे क्यों कलप वृक्ष,
याचक विचारे लघु तृण हूतें है सही ॥
इष्टके संयोगतें न सीरो घनसार कछू,
जगतको ख्याल इंद्रजाल सम है वही।
ऐसी दोय दोय बात दीखें विधि एकहीसी,
काहेको बनाई मेरे धोखो मन है यही ॥८०॥

८०—यहां कवि विधाता कहिये कर्ता से प्रश्न करे है। कि हे विधाता जब तैंने सज्जन रचे तो अमृत रचने से क्या मतलब था। अर्थात् क्यों रचा। और जब दुर्जन रचे तो जहर रचने से क्या प्रयोजन था। जब दाता बनाये तो कल्प वृक्षों की क्या जरूरत थी जब भिक्षुक बनाये तो तृण क्यों बनाये। क्यों कि याचक तृणोंसे भी हलके हैं। इष्ट पदार्थ के मिलने से जो शीतलता होती है वह चन्दन से नहीं होती। जगत

का ख्याल इन्द्रजाल के समान झूठा है। ऐसी जो दो दो बातें एकसी दिखाई देती हैं हैं विधाता किस कारण बनाई मेरी समझ में नहीं आती।

नोट—इस का मतलब यह समझना कि सज्जन अमृत से भी अच्छा है। और दुष्ट जन जहर से भी बुरा है। और मांगने वाला तृण से भी हलका है।

चौवीसतीर्थंकरोंके चिन्ह। (छप्पय)

गऊपुत्र गजराज, बाजि बानर मनमोहैं।
कोक कमल सांथिया, सोम सफरीपति सोहैं॥
सुरतरु गैंडा महिष, कोल पुनि सेही जानो।
वज्र हिरन अज मीन, कलश कच्छप उरआनो॥
शतपत्र शंख अहिराज हरि, ऋषभदेवजिन आदि ले।
श्रीवर्द्धमानलों जानिये, चिहन चारु चौवीस थे॥८१॥

८१—श्री आदिनाथ से महावीर पर्यन्त चौवीस तीर्थंकरों को यह चिन्ह हैं:—

१—ऋषभदेवके बैल का चिन्ह २—अजितनाथ के हाथी क चिन्ह
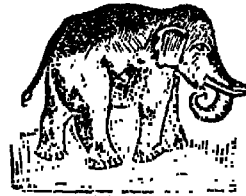
४—संभवनाथके घोड़े का चिन्ह ४—अभिनन्दननाथकेबन्दरकाचिन्ह
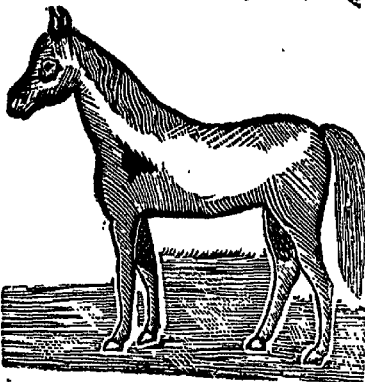
५—सुमतिनाथ के चकवे का चिन्ह ६—पद्मप्रभ के कमलका चिन्ह
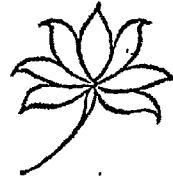
७—सुपार्श्वनाथके साँथियेका चिन्ह ८—चन्द्रप्रभ के अर्धचन्द्रकाचिन्ह
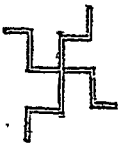
९—पुष्पदन्त के नाकू का चिन्ह।

१०—शीतलनाथके कल्पवृक्ष का चिन्ह ११—श्रेयासनाथकेगैंडेकाचिन्ह

१२-वासुपूज्य के भैंसे का चिन्ह

विमलनाथ के सूवर का चिन्ह
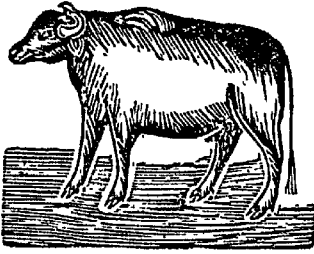
१४-अनन्तनाथ के सेही का चिन्ह।
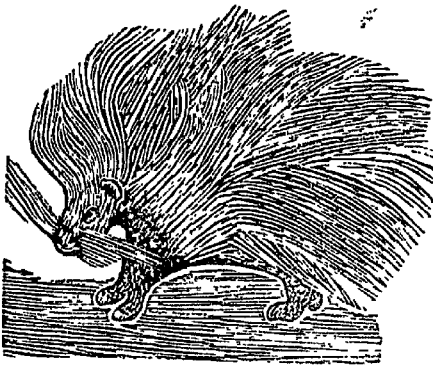
१५-धर्मनाथके वज्रदण्डका चिन्ह

१६-शान्तिनाथके हिरण का चिन्ह
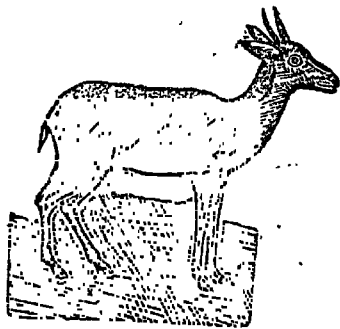
१७–कुन्थुनाथके बकरे का चिन्ह १८–अरनाथके मच्छीका चिन्ह
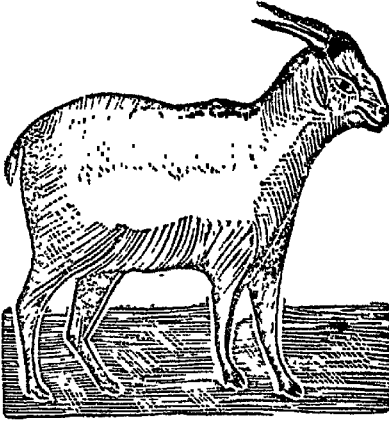
१९–मल्लिनाथके कलशका चिन्ह २०–मुनिसुव्रतनाथकेकछवेका चिन्ह
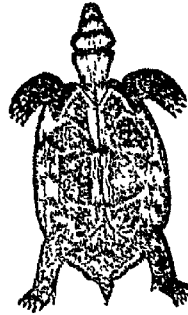
२१–नमिनाथ के कमलका चिन्ह २०–नेमीनाथ के शंख का चिन्ह
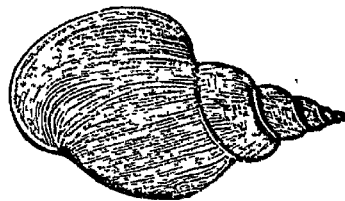
२३-पार्श्वनाथ के, सर्प का चिन्ह, २४-महावीर के शेर का चिन्ह
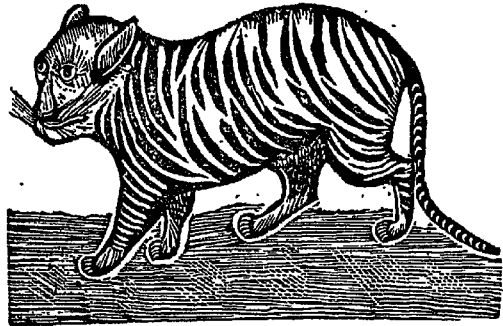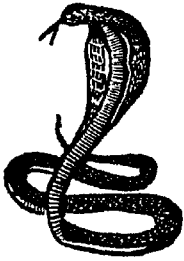
श्रीऋषभदेवके पूर्वभव। (कवित्त मनहर)

आदि जयवर्मा दूजे महाबलभूप तीजे,
सुरगईशान ललितांग देव भयो है।
चौथे वज्रजंघ राय पांचवें जुगल देह,
सम्यक ले दूजे देवलोक फिर गयो है॥
सातवें सुबुद्धिराय आठवेंअच्युतइन्द्र,
नवमें नरेन्द्र वज्रनाभ नाम भयो है।
दशैं अहमिन्द्र जान ग्यारवें ऋषभभान,
नाभिवंश भूधरके सीस जन्म लियो है॥८२॥

८२—पहिले भव में आदिनाथ का जीव जयवर्म्मा, दूसरे भव महाबल राजा तीसरे भव में ईशान स्वर्ग में ललतांग नामा देव। चौथे भव वज्रजंघ राजा। पांचवें भव में भोग भूमि में युगलीया। छठे भव में दूजे स्वर्गदेव। सातवें भव में सुबुद्धि नाम राजा। आठवें भव में अच्युत स्वर्ग में इन्द्र। नवमें भव में वज्र नाभि चक्रवर्त्ती दसवें भव में अहमिन्द्र। ग्यारवें भव में ऋषभदेव नाभि वंश के सूर्य हुए उनको भूधर नमस्कार करे है॥

नोट—इस से पहिले जो अनन्त भव धरें उनको ग्रन्थ के विस्तार से कवि ने वर्णन नहीं किया।

श्रीचन्द्रप्रभके पूर्वभव। (गीता)

श्रीवर्म भूपत्ति पाल पुहमी, स्वर्ग पहले सुर भयो।
पुनि अजितसेन छखंडनायक, इन्द्र अच्युतमें थयो॥
वर पद्मनाभि नरेश निर्जर, वैजयंति विमानमें।
चंद्राभ स्वामी सातवें भव, भये पुरुष पुरानमें॥८३॥

८३—पहले भव में चन्द्राप्रभ स्वामी का जीव श्रीवर्मा राजा। दूसरे भव में पहले स्वर्ग में देव। तीसरे भव में अजितसेन चक्रवर्ती। चौथे भव में सोहलवें स्वर्ग में इन्द्र। पांचवें भव में पद्मनाभि राजा। छठे भव में वैजियन्त नामा दूसरा अनुतर विमान में देव। सातवें भव में चन्द्राप्रभ स्वामी।

श्रीशान्तिनाथके पूर्वभव। (कवित्त ३१ मात्रा)

सिरीसेन आरज पुनि स्वर्गी, अमिततेज खेचर पद पाय।
सुर रविचूल स्वर्ग आनतमें, अपराजित बलभद्र कहाय॥
अच्युतेंद्र वज्रायुध चक्री, फिर, अहमिंद्र मेघरथराय।
सरवारथसिद्धेश शान्तिजिन,ये प्रभु की द्वादश परजाय॥८४॥

८४-शांतिनाथ भगवान पहले भव में श्रीसेन दूसरे भव भोगभूमियां। तीजे भव स्वर्गवासी देव। चौथे भव अमिततेज विद्याधर। पांचवें भव तेहरवें स्वर्गदेव। छठे में अपराजित नाम बलभद्र सातवें भव सोहलवें स्वर्ग देव। आठवें भव वज्रायुद्ध चक्रवर्ती नव में भव अहमिन्द्र। दसवें मेघरथ राजा। ग्यारवें सर्वार्थ सिद्ध बाहरवें शान्तिनाथ स्वामी॥

नेमिनाथके पूर्वभव। (छप्पय)

पहले भव वनभील, द्रुतिय अभिकेतु सेठ घर।
तीजे सुर सौधर्म, चौथ चिन्तागति नभचर॥
पंचम चौथे स्वर्ग, छट्ठे अपराजित राजा।

अच्युतेंद्र सातवें, अमरकुलतिलक विराजा ॥
सुप्रतिष्ठराय आठम नवें, जन्मजयन्तविमान धर।
फिर भये नेमि हरिवंशशशि, ये दशभव सुधि करहुनर॥८५॥

८५—श्री नेमिनाथ पहले भव भील दूसरे भव अभिकेतु सेठ। तीसरे भव सौधर्म स्वर्ग में देव। चौथे भव चिन्तागति विद्याधर। पांचवें भव चौथे स्वर्ग देव। छठे भव अपराजित राजा। सातवें भव अच्युत स्वर्ग में इन्द्र। आठवें सुप्रतिष्ठ राजा। नवमें जयन्त विमान (जो कि अनुत्तर विमानों में से तीसरा है।) दशवें भव श्रीनेमिनाथ स्वामी॥

श्रीपार्श्वनाथके भवान्तर। (कवित्त ३१ मात्रा)

विप्रपूत मरुभूत विचच्छन, वज्रघोष गज गहन मंझार।
सुर पुनि सहसरश्मि विद्याधर, अच्युतस्वर्ग अमरिभरतार॥
मनुजइंद्र मध्यम ग्रैवेयिक, राजपुत्र आनंदकुमार।
आनतेंद्र दशवें भव जिनवर, भये पासप्रभुके अवतार॥८६॥

८६—श्री पार्श्वनाथ का जीव पहले भव ब्राह्मण मरूभूत मन्त्री दूजे भव हस्ती। तीसरे भव स्वर्ग में देव। चौथे भव सहस्त्ररश्मि विद्याधर। पांचवें भव सोहलवें स्वर्गदेव। छठे भव चक्रवर्ती सातवें भव मध्यम ग्रीवक में देव। आठवें भवमें आनन्द कुमार राजा। नवमें भव आनत नामा तेहरवे स्वर्ग में इन्द्र। दसवें भव पार्श्वनाथ स्वामी॥

राजा यशोधर के भवान्तर। (मत्तगयंद सवैया)

राय यशोधर चन्द्रमती, पहले भव मंडल मोर कहाये।
जाहक सर्प नदीमध मच्छ, अजा अज भैंस अजा फिर जाये।
फेरि भये कुकड़ा कुकड़ी, इन सात भवांतरमें दुख पाये।
चूनमई चरणायुध मार, कथा सुन संत हिये नरमाये॥८७॥

८७—राजा यशोधर और उसकी राणी चन्द्रमती चून का मुर्ग बना कर मारने के पाप से अगले भव मोर मोरनी भये। दूजे भव सर्प सर्पनी तीजे भव मच्छ

मच्छी। चौथे भव बकरा बकरी। पांचवें भैंसा भैंस। छठे फिर बकरा बकरी। सातवें फिर मुर्गा मुर्गी। इस प्रकार सात भव में महा दुःख पाये सन्तजनों को यह कथा सुन कर अपने चित्त में दया धारनी चाहिये। अर्थात् जब चून के मुर्गे मारने से इतना पाप हुआ तो साक्षात् जीव के मारने के पापका क्या ठिकाना है।

सुबुद्धिसखीके प्रति वचन। (मनहर कवित्त)

कहै एक सखी स्यानी सुनरी सुबुद्धि रानी,
तेरो पति दुखी देख लागै उर आर है।
महा अपराधी एक पुग्गल है छहो माहिं,
सोई दुख देत दीखै नाना परकार है॥
कहत सुबुद्धि आली? कहा दोष पुग्गल को,
अपनी ही भूल लाल होत आप ख्वार है।
"खोटो दाम आपनो सराफै कहां लगे बीर,"
कोऊको न दोष मेरो भोंदू भरतार है॥८८॥

८८—एक स्यानी सखी सुबुद्धि रानी से कहे है कि हे सुबुद्धि राणी तेरा पति दुखी देख कर मेरे ह्रदय में कांटा सा चुभे है। छह द्रव्यों में से एक पुद्गल द्रव्य महा पापी है। जो नानाप्रकार के दुःख देता हुआ दिखाई देता है। फिर सुबुद्धि उसे उत्तर देती है कि हे बहन पुद्गल का क्या दोष है। यह जीव अपनी भूल से आप ही दुखी हो रहा है। अपना खोटा पैसा सराफ के यहां बाजार में कैसे चले। भावार्थ किसी का दोष नहीं मेरा पति ही मूर्ख है।

गुजराती भाषामें शिक्षा। (कड़का)

ज्ञानमय रूप रूडो वनो जेहूंन लखै क्यों न रे सुखपिंड भोला।
बेगली देहथी नेह तोसों करै, एहनी टेव जों मेह बोला॥
मेरनै मान भव दुक्ख पाम्या पछै, चैन लाधो न थी एक तोला।
बलीदुख वृच्छन बीज बावे तुमें, आपथीआपने आप बोला॥८९॥

८९—अरे सुख पिण्ड सीधे साधे तू आपज्ञान मूर्ति सुन्दर बना है सो अपने ज्ञान में। स्वरूप को किस वास्ते नहीं देखता देह आत्मा से न्यारी थी इसने तेरे से प्रीति कर ली इसका यही स्वभाव है। इस देह को अपनी मतमाने। वरना भवदुःख पा कर पछतावेगा जरा भी चैन नहीं मिलेगी। बडे दुःखदाई वृक्ष का बीज आप मत बो। यह हमारी शिक्षा है।

द्रव्यलिंगी मुनि। (मत्तगयंद सवैया)

शीत सहैं तन धूप दहैं तरुहेट रहैं करुना उर आनैं।
झूठ कहैं न अदत्त गहैं बनिता न चहैं लव लोभ न जानैं॥
मौन बहैं पढ़ि भेद लहैं नहिं, नेमज हैं व्रत रीति पिछानैं।
यों निबहैं परमोख नहीं, बिन ज्ञान यहै जिनवीर बखानै॥९०॥

९०—द्रव्य लिंगी मुनि शीतकाल की बाधा सहैं। और तन को धूप में जलावें वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे खडे रहें, और दया मन में लावें झूठ नहीं बोलते। बिना दिया भोजन नहीं लेते स्त्री की इच्छा नहीं धनका लोभ नहीं शांत रहते हैं। शास्त्र पढ़तें हैं पर उसका भेद नहीं जानते नेम धारते हैं। व्रतों की विधि जाने हैं इतना निभाव करे हैं, परन्तु बिना आत्मज्ञान के हुए मोक्ष नहीं जाते। महावीर स्वामी ने ऐसा उपदेश है।

अनुभवप्रशंसा। (कवित्त मनहर)

जीवन अलप आयु बुद्धिबलहीन तामें,
आगम अगाधसिंधु कैसे ताहि डाक है।
द्वादशांग मूल एक अनुभौ अपुब कला,
भवदाघहारी घनसारकी सलाक है॥
यह एक सीख लीजे याहीको अभ्यास कीजे,
याको रस पीजे ऐसो वीरजिन-वाक है।
इतनो ही सार येही आतमको हितकार,
यहीं लो सम्हार फिर आगे ढूक ढाक है॥९१॥

आगम = शास्त्र = अगाध = गहरा, सिन्धु = समुद्र, डांक = फलांग मारना, दाघ = गरमी। घनसार = मेह। सलाख = डंडा। ढूक ढाक = कुछ नहीं॥

९१—अवल तो जीवना ही थोड़ा है, उस में बुद्धि और बल की न्यूनता है और शास्त्र गहरा समुद्र है उसकी थाह कैसे पावेगा, द्वादशांग वाणी का मूल क्या है उत्तम विचार करने की सामर्थ सो जन्म रूप गरमी के दूर करने को मेघ के जल की धार है। अर्थात् अनुभव भ्यास सीख और इस ही का अभ्यास कर और इसी रस को पी। यह महावीर स्वामी का वचन है। यही बात सार और आत्माका हित करने वाली है। इसी को सम्भालो आगे फिर कुछ नहीं है।

भगवत्प्रार्थना।

आगम अभ्यास होहु सेवा सरवज्ञ तेरी,
संगति सदीव मिलौ साधरमी जनकी।
सन्तनके गुनको बखान यह बान परो,
मैटो टेव देव!पर औगुन कथनकी॥
सबही सों ऐन सुखदैन मुखवैन भाखों,
भावना त्रिकाल राखों आतमीक धन की।
जौलों कर्म काट खोलों मोक्ष के कपाट तौलों,
ये ही बात हूजो प्रभु पूजो आस मनकी॥ ९२॥

९२—शास्त्र का अभ्यास हो, और भगवान की सेवा करूं। और हमेशां साधर्मियों की संगत मिले। और सन्तोष गुण करने की आदत हो। और पराये अवगुण कहने का स्वभाव दूर हो। और सब से अति सुखदाई वचन बोलों। और तीनों काल आतमरूप धन की भावना करूं अर्थात् आतमध्यान करूं हे प्रभु जब तक कर्म काट मोक्ष के किवाड़ खोलूं अर्थात् मोक्ष जाऊं। तब तक यही बात होवे। यह मेरे मन की आशा पूर्ण करो॥

(जिनधर्मप्रशंसा दोहा)

छये अनादि अज्ञान सों, जगजीवन के नैन।
सब मत मूठी धूलकी, अंजन है मत जैन॥ ९३॥

९३—संसारी जीवों के नेत्र अज्ञान से ढके हुए हैं। सारे मत धूल की मठी समान हैं। सिरफ जैन मत आखों के अञ्जन समान है॥

मूल नदी के तिरनको, और जतन कछु हैन।
सब मत घाट कुघाट हैं, राजघाट है जैन॥ ९४॥

९४-संसार रूपी नदी से पार उतरने को और कोई यत्न नहीं है सब मत घाट कुघाट समान हैं सिरफ जैन मत राजघाट कहिये सीधा मार्ग है।

तीन भवन में भर रहे, थावर जंगम जीव।
सब मत भक्षक देखियें, रक्षक जैन सदीव॥ ९५॥

९५-तीनलोक में स्थावर जंगम जीव भरे हुए हैं सारे मत उनको भक्षण करणहारे हैं। सिरफ जैन मत उनकी सदा रक्षा करने वाला है॥

इस अपार भवजलधि में, नहिं नहिं और इलाज।
पाहन वाहन धर्म सब, जिनवरधर्म जिहाज॥ ९६॥

९६—इस संसार रूपी अपार समुद्र में और कुछ इलाज नहीं हैं क्योंकि जितने अन्यमत हैं वे सब पत्थरकी नाव समान हैं। सिरफ जैनधर्म जहाज समान है।

मिथ्यामत के मदछके, सब मतवाले लोय।
सब मतवाले जानिये, जिनमत मत्त न होय॥ ९७॥

९७—मिथ्या मत रूपी मद से छके हुये सब मत वाले लोक उन्मत्त हैं सभही को मस्त जानों परन्तु जैन मत में मस्ती नहीं है।

मतगुमान गिरपर चढ़े, बड़े भये मन माहिं।
लघु देखें सब लोक को, क्यों ही उतरत नाहिं॥९८॥

९८—मत रूपी अभिमान के पहाड़ पर चढ़ कर अपने मन में बड़े बने हुए हैं। और सब को तुच्छ देखे हैं। किसी तरह भी नीचे नहीं उतरते।

चामचक्षु सों सब मती, चितवत करत नवेर।
ज्ञान नैन सों जैन ही, जोवत इतनो फेर॥ ९९॥

९९—सब मत वाले चरम चक्षु से देख कर निश्चय करे हैं। और जैनमत वाले ज्ञानरूपी नेत्रों से देखे हैं। बस इतना ही फरक है।

ज्यो बजाज ढिग राखिकैं, पट परखै परवीन।
त्यों मतसों मत की परख, पावैं पुरुष अमीन ॥ १००

१००—जैसे चतुर बजाज दो कपड़ों को अपने पास रख कर एक दूसरे से मिला कर उनकी परीक्षा करे हैं। तैसे ही पण्डित पुरुष मत से मत को परखे हैं।

दोय पक्ष जिनमत विषै, नय निश्चय व्यवहार।
तिन विन लहै न हंस यह, शिवसरवर की पार।१०१।

१०१—जिन मत विषे दो पक्ष मानी हैं। निश्चयनय और व्यवहारनय, इन दोनों पक्षों के माने बिना यह जीव रूपी हंस मोक्ष रूपी सरोवर को नहीं पहुंचेगा॥

सीझे सीझैं सीझ हो, तीनलोक तिहुंकाल।
जिनमतको उपकार सब, मत भ्रम करहु दयाल ॥१०२

१०२—जो पुरुष तीनलोक तीनकाल में मोक्ष गए और जांय हैं और जांवेंगे। यह सब जिन मत का उपकार है। हे भाई इस में शंका मत करो॥

महिमा जिनवर वचनकी, नहीं वचनबल होय।
भुजबलसों सागर अगम, तिरे न तीरहिं कोय ॥१०३॥

१०३—जिनवर धर्म की प्रशंसा वचन द्वारा नहीं हो सकती। जैसे भुजाओं के बल से अथाह समुद्र को कोई भी तिर कर पार नहीं गया और न जायगा॥

अपने अपने पंथ को, पोखै सकल जहांन।
तैसैं यह मतपोखना, मत समझो मतिवान॥ १०४॥

१०४—जसे अपने २ मत की सारा जगत प्रशंसा कर पुष्टि करें है, तैसे ही लोक रूढ़ता कर हे बुद्धिमान इस प्रशंसा से हम अपने जैनमत की पुष्टी नहीं करे हैं। बलकि यथार्थ उपदेश है॥

इस असार संसारमें, और न सरन उपाय।
जन्म जन्म हूजो हमैं, जिनवरधर्म सहाय ॥१०५॥

१०५—इस असार संसार में और कोई कारण नहीं है। जन्म जन्ममें हमको जैनधर्म ही का शरण सहाई हूजियो।

अन्तप्रशस्ति। (कवित्त मनहर)

आगरेमें बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल,
बालकके ख्यालसो कवित्त कर जानै हैं।
ऐसे ही कहत भयो जैसिंह सवाई सूबा,
हाकिम गुलाबचंद रहे तिहि थानै हैं॥
हरिसिंह साहके सुवंश धर्मरागी नर,
तिनके कहेसों जोरि कीनी एक ठानै हैं।
फिरि फिरि प्रेरे मेरे आलसको अंत भयो,
उनकी सहाय यह मेरे मन मानै हैं ॥१०६॥

१०६—आगरे नगर में बालबुद्धि भूधरदास खण्डेलवाल जैनी बचपन से कवित्त जोड़ना करे है। और गुलाबचन्द्र जो सवाई जैसिंह सूबा के हाकिम इस स्थान में रहे हैं और हरिसिंह शाह के वंश में जो धर्मात्मा पुरुष हैं उनके कहने से मैंने यह कवित्त जोडे हैं। उनके समझावने से मेरा आलस्य दूर भया उनकी सहायता का मैं अहसान मानूं हूं।

दोहा।

सतरहसै इक्यासिया, पोह पाख तमलीन।
तिथि तेरस रविवारको, शतक सम्पूर्ण कीन ॥१०७॥

१०७—सम्वत् सतरह सौ इक्यासी (१७८१) पौष मास कृष्णपक्ष की तेरस रविवार को यह जैन शतक सम्पूर्ण हुआ॥